भारतीय नारी

स्वामी विवेकानन्द

(तृतीय संस्करण)

श्रीरामकृष्ण आश्रम,
नागपुर, मध्यप्रदेश

[अगस्त १९५४]

[मूल्य ।।।)

वक्तव्य

'भारतीय नारी' का यह दुहराया हुआ नवीन तृतीय सस्करण है।

नरनारायण के एकनिष्ठ सेवक स्वामी विवेकानन्दजी के निर्मल चित्त में अतीत, वर्तमान तथा भावी समाज का जो चित्र प्रतिफलित हुआ था, उसका एक ऐसा सनातन रूप है, जो काल के विपर्यय से म्लान नहीं होता। नारी-समाज के सम्बन्ध में उनकी उक्तियाँ आज प्राय. पचास साल के बाद भी इसी लिए समभाव से उज्ज्वल तथा समाज-जीवन के लिए उपयुक्त है, कि वे थे 'आमूल-संस्कारक'। सदा परिवर्तनशील समाज की क्षणिक तृप्ति के लिए उन्होंने संस्कार के कृत्रिम प्रसवण की रचना कर प्रशंसा अर्जन नहीं की; वे चाहते थे समाज की जीवनीशक्ति को प्रबुद्ध करना—जिससे उसके हृदय के आनन्द की शतधारा स्वत· ही उच्छ्वसित हो सके।

आंग्ल भाषा में प्रकाशित स्वामी विवेकानन्दजी के ग्रथोद्यान से उन्ही चिर-नूतन भावपुष्पों का चयन रामकृष्ण मिशन के स्वामी रगनाथानन्दजी ने किया है। उन्होंने स्वामी विवेकानन्दजी के भारतीय नारी सम्बन्धी मौलिक विचारो का संग्रह 'Our Women' नामक पुस्तक के रूप में प्रकाशित किया है। प्रस्तुत पुस्तक उसी अंग्रेजी पुस्तक का हिन्दी अनुवाद है। इसमें स्वामी विवेकानन्द कृत 'Women of India' नामक पुस्तक का लगभग पूरा अनुवाद भी जोड़ दिया गया है। इसके अतिरिक्त और भी कुछ महत्वपूर्ण अंशों का समावेश किया गया है।

हम श्री इन्द्रदेव सिंह 'आर्य', एम. एससी., एल एल. बी के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकाशित करते हैं, जिन्होंने इस पुस्तक का अनुवाद-कार्य बड़ी सफलतापूर्वक किया है।

हमें आशा है कि इस प्रकाशन से हिन्दी जनता का कई दृष्टिकोणों से लाभ होगा।

नागपुर,
१ अगस्त, १९५४

प्रकाशक

अनुक्रमणिका

स्वामी विवेकानन्द

भारतीय स्त्री का आदर्श

"भारत! तुम मत भूलना कि तुम्हारी स्त्रियों का आदर्श सीता, सावित्री, दमयन्ती हैं; मत भूलना कि तुम्हारे उपास्य सर्वस्त्यागी उमानाथ शंकर हैं; मत भूलना कि तुम्हारा विवाह, तुम्हारा धन और तुम्हारा जीवन इन्द्रिय-सुख के लिए — अपने व्यक्तिगत सुख के लिए नहीं है; मत भूलना कि तुम जन्म से ही 'माता' के लिए बलि-स्वरूप रखे गए हो; मत भूलना कि तुम्हारा समाज उस विराट् महामाया की छाया मात्र है।"

भारतीय नारी

भारतीय स्त्री का आदर्श

प्रत्येक भारतवासी भगवान श्रीरामचन्द्र और माता सीताजी के जीवन को आदर्श मानता है। प्रत्येक बालिका सीताजी के भव्य आदर्श की आराधना करती है। भारतवर्ष की प्रत्येक स्त्री की यह आकांक्षा है कि वह अपने जीवन को भगवती सीता के समान पवित्र, भक्तिपूर्ण और सर्वसह बनाए। सीताजी और भगवान श्रीरामचन्द्र के चरित्रों के अध्ययन से भारतीय आदर्श का पूर्ण ज्ञान हो सकता है। जीवन के पाश्चात्य और भारतीय आदर्शों में भारी अन्तर है। सीताजी का चरित्र हमारी जाति के लिए सहनशीलता का आदर्श है। पाश्चात्य संस्कृति कहती है कि तुम यन्त्रवत् कार्य में लगे रहो और अपनी शक्ति का परिचय कुछ भौतिक ऐश्वर्य प्राप्त करके दिखाओ। भारतीय आदर्श, इसके विपरीत, कहता है कि तुम्हारी महानता दुःखों को सहन करने की शक्ति में है। पाश्चात्य आदर्श अधिक-से-अधिक धन-सम्पत्ति के संग्रह में गर्व करता है, भारतीय आदर्श हमें अपनी आवश्यकताओं को न्यून-से-न्यून कर जीवन को सरलतापूर्वक व्यतीत करना सिखाता है। इस प्रकार पूर्व और पश्चिम के आदर्शों में दो ध्रुवों का अन्तर है। माता सीता भारतीय आदर्श की प्रतीक हैं।

कई लोग प्रश्न करते हैं कि क्या सीता और राम की कथा में कोई ऐतिहासिक तथ्य है, क्या वास्तव में सीता नाम की

किसी स्त्री ने विश्व में जन्म लिया था? हमें इस वाद-विवाद में पड़ने की कोई आवश्यकता नहीं। हमारे लिए तो इतना ही जानना पर्याप्त है कि सीताजी का आदर्श मानवमात्र के लिए परम उज्ज्वल रूप में दीप्तिमान हो रहा है। आज सीताजी के आदर्श के सदृश ऐसी कोई अन्य पौराणिक कथा नहीं है, जिसे समस्त राष्ट्र ने इतना आत्मसात् कर लिया हो, जो उसके जीवन के साथ इतनी एकाकार हो गई हो और उसके जातीय रक्त में इस प्रकार घुल-मिल गई हो। भारत में माता सीता का नाम पवित्रता, साधुता और विशुद्ध जीवन का प्रतीक है; वह स्त्री के अखिल गुणों का जीवित जाग्रत आदर्श है।

भारत में कोई गुरु अथवा सन्त जब किसी स्त्री को आशीर्वाद देते हैं, तो कहते हैं, 'तुम सीताजी के समान बनो'; और जब वे किसी बालिका को आशीर्वाद देते हैं तब भी यही कहते हैं कि सीताजी का अनुकरण करो। क्या स्त्रियाँ, क्या बालिकाएँ सब भगवती सीता की सन्तान हैं, और वे सब माता सीता के समान धीर, चिरपवित्र, सर्वसह और सतीत्वमय जीवन बनाने के लिए प्रयत्नशील हैं।

भगवती सीताजी को पद-पद पर यातनाएँ और कष्ट प्राप्त होते हैं, परन्तु उनके श्रीमुख से भगवान रामचन्द्र के प्रति एक भी कठोर शब्द नहीं निकलता। सब विपत्तियों और कष्टों का वे कर्तव्य-बुद्धि से स्वागत करती हैं और उसे भलीभाँति निभाती हैं। उन्हें भयंकर अन्यायपूर्वक वन में निर्वासित कर दिया जाता है, परन्तु उसके कारण उनके हृदय में कटुता का लवलेश भी नहीं। यही सच्चा भारतीय आदर्श है।

भगवान बुद्ध ने कहा है, "जब तुम्हें कोई चोट पहुँचाता

है, और तुम प्रतिशोध में उसे चोट पहुँचाते हो, तो इस प्रकार प्रथम अपराध का निवारण तो नहीं होता, अपितु वह संसार में केवल दुष्टता की वृद्धि का कारण बन जाता है।" सीताजी भारतीय स्वभाव की यथार्थ प्रतीक थीं, उन्हें पहुँचाई गई चोट या कष्ट के प्रत्युत्तर में उन्होंने किसी दूसरे को कष्ट नहीं दिया।

यदि हम विश्व के भूतकालीन साहित्य को खोजें, और भविष्य में होनेवाले साहित्य का भी मथन करने के लिए तैयार रहें तो भी हमें सीताजी के समान भव्य आदर्श कहीं प्राप्त नहीं होगा। सीताजी का चरित्र अद्भुततम्य है, सीताजी के जीवन-चरित्र का उद्भव विश्व-इतिहास की वह घटना है, जिसकी पुनरावृत्ति असम्भव है। यह सम्भव है कि विश्व में अनेक राम का जन्म हो, परन्तु दूसरी सीता कल्पनातीत है। सीताजी भारतीय नारीत्व की उज्ज्वल प्रतीक हैं। पूर्ण विकसित नारीत्व के सभी भारतीय आदर्शों का मूल प्रस्रवण वही एकमात्र सीता-चरित्र है। आज सहस्रों वर्ष के उपरान्त भी भगवती सीता काश्मीर से कन्याकुमारी तक और कच्छ से कामरूप तक, क्या पुरुष, क्या स्त्री और क्या बालक-बालिका सभी की आराध्य देवी बनी हुई हैं। पवित्रता से भी अधिक पवित्र, धैर्य और सहनशीलता की साक्षात् प्रतिमा रामदयिता सीता सदा-सर्वदा इस महान् पद पर आसीन रहेंगी।

माता सीता, जिन्होंने विश्व की महान्-से-महान् विपत्तियों और दारुण दु:खों को तनिक भी आह का उच्चारण किए बिना सहा; वे सीताजी, जिन्होंने चिरपवित्र सतीधर्म का आदर्श उपस्थित किया; वे सीताजी, जो मानव और देवता सभी की श्रद्धा और भक्ति का स्थान हैं, चिरकाल तक भारत की आराध्य

देवी वनी रहेंगी। सीताजी के जीवन से प्रत्येक भारतीय इतना परिचित है कि अधिक विस्तार में जाने की आवश्यकता प्रतीत नहीं होती।

चाहे हमारा सारा पुराण-साहित्य लुप्त हो जाय, संस्कृत भाषा और वेद भी सदा के लिए नष्ट हो जायँ, फिर भी जब तक जंगली-से-जंगली भाषा वोलनेवाले पाँच हिन्दू विद्यमान हैं, तब तक सीताजी का गुण-गान होता रहेगा। वास्तव में सीताजी इस राष्ट्र का प्राण हैं। प्रत्येक हिन्दू स्त्री और पुरुष के रक्त में सीताजी का आदर्श विद्यमान है, हम सब उसी माता सीता की सन्तान हैं। यदि हम भारतीय स्त्रियों को आधुनिक रूप देने के उद्देश से उन्हें सीता के आदर्श से वंचित करने का प्रयत्न करें, तो——जैसा कि हम प्रतिदिन देखते हैं——हमारा यह प्रयत्न उसी क्षण विफल सिद्ध होगा। आर्यावर्त की स्त्रियों का विकास और उन्नति तभी सम्भव है, जब वे सीताजी के पद-चिह्नों पर चलें——'नान्यः पंथा'।

हरएक भारतकन्या की यह आकांक्षा है कि वह सावित्री के समान बने, जिसके प्रेम ने मृत्यु पर भी विजय पा ली, जिसने अपने सर्वविजयी प्रेम द्वारा मृत्युदेवता यम के पाश से भी अपने हृदयेश की आत्मा का छुटकारा करवा लिया।

अश्वपति नामक एक राजा थे। उनकी कन्या इतनी सुन्दर और सुशील थी कि उसका नाम ही सावित्री पड़ गया——सावित्री, जो कि हिन्दुओं के एक अति पावन स्तोत्र का नाम है। युवती होने पर, सावित्री के पिता ने उसे अपना पति निर्वाचित करने के लिए कहा। प्राचीन भारतीय राजकुमारियाँ अत्यन्त स्वतंत्र थीं और अपना भावी जीवन-साथी स्वयं चुनती थीं।

सावित्री ने पिता की आज्ञा स्वीकार कर ली और वह एक स्वर्णखचित रथ पर आरूढ़ हो, पिता द्वारा साथ दिए गए अनुचरों और वृद्ध मन्त्रियों सहित, विभिन्न राज-दरबारों में जा-जा, कई राजकुमारो से भेंट करती रही, किन्तु उनमें से कोई भी उसका हृदय आकर्षित न कर सका। अन्त में वे लोग तपोवन-स्थित एक पवित्र मुनि-कुटीर में आए।

द्युमत्सेन नामक एक नृपति को वृद्धावस्था में शत्रुओं ने पराजित कर, उसका राज-पाट छीन लिया था। बेचारा राजा इस अवस्था में अपनी आँखें भी खो बैठा। निराश और असहाय हो, इस वृद्ध, अन्ध राजा ने अपनी रानी और पुत्र को साथ ले जंगल में शरण ली, और कठोर व्रतोपवास में अपना जीवन विताने लगा। उसके पुत्र का नाम सत्यवान था।

दैवयोग से सावित्री सारी राजसभाओं में जाने के बाद इसी तपोवन में आ गई। सावित्री ने कुटी में आकर राजतपस्वी सत्यवान के दर्शन किए, और मन-ही-मन उसे अपना हृदयेश बनाने का संकल्प कर लिया। राजसभाओं और राजप्रासादों के निवासी राजकुमार जिस सावित्री का मन मोहित न कर सके, उसी का हृदय आज वनवासी द्युमत्सेन के पुत्र सत्यवान ने चुरा लिया।

सावित्री पितृगृह लौट आई। पिता ने पूछा, "वत्से, क्या कोई राजकुमार दिखा, जिससे तुम विवाह करना चाहोगी?" लज्जा से रक्तकपोल हो सावित्री विनयपूर्वक बोली, "हाँ, पिताजी।" "तो, उस राजकुमार का नाम क्या है?" "वे युवराज नही हैं,— राजा द्युमत्सेन के पुत्र हैं, जो अपना राज्य खो चुके है। वे एक राजपुत्र हैं, जो राज्य-विहीन है, और आश्रम

में कंद-मूल-फल संग्रह कर, वनवासी माता-पिता के साथ संन्यासियों का जीवन व्यतीत करते हैं।"

दैवयोग से महर्षि नारद भी उस समय वहाँ उपस्थित थे। राजा ने उनकी सलाह ली। महर्षि ने बताया कि यह निर्वाचन अत्यन्त अशुभ और अनिष्टकारक होगा। राजा ने महर्षि से इसका कारण बताने का अनुरोध किया।

महर्षि नारद बोले, "राजन्, आज से एक साल में सत्यवान कालकवलित हो जायगा।" राजा इस अनिष्ट की आशंका से भयग्रस्त हो सावित्री से बोले, "बेटी, सत्यवान का एक वर्ष में ही देहावसान हो जायगा और तुम्हें वैधव्य की दारुण यातनाएँ सहनी पड़ेंगी। जरा विचार करो, पुत्री! और अपना निश्चय त्याग दो। इस प्रकार के अल्पायु और आसन्नमृत्यु वर से तुम्हारा विवाह किसी हालत में न होगा।" सावित्री ने उत्तर दिया, "कोई चिन्ता नहीं, पिताजी! आप मुझसे किसी अन्य पुरुष के साथ विवाह-बद्ध हो अपना मानसिक पावित्र्य नष्ट करने का आग्रह न कीजिए। मैं साहसी और धर्मपरायण सत्यवान को प्रेम करती हूँ, और उसे अपने मन-ही-मन वरण कर चुकी हूँ। आर्य-कन्याओं का विवाह जीवन में एक ही बार होता है और वे कभी संकल्प-च्युत नहीं होतीं।" जब राजा अश्वपति ने देखा कि सावित्री अपने निश्चय पर अटल है, तो उन्हें बाध्य होकर सहमत होना पड़ा। सावित्री और सत्यवान विवाह-ग्रंथि में बँध गए। तदनन्तर सावित्री अपने पति के साथ रहने और सास-श्वसुर की सेवा करने, राज-महल को छोड़ वन में चली गई।

सावित्री को अपने पति की मृत्यु की तिथि ज्ञात थी, पर

उसने कभी भी उससे इसकी चर्चा न की। प्रतिदिन सत्यवान गहन अरण्य में प्रवेश कर, फल-मूल संग्रह करता, ईंधन के लिए लकड़ी के बोझ बँधता और कुटी पर लौट आता; वह भी भोजन बनाती और वृद्ध दम्पति की सेवा में रत रहती। इस प्रकार उनकी जीवन-धारा शान्त गति से बहती रही, और धीरे-धीरे वह दुर्दिन समीप आ गया। जब केवल तीन ही दिन शेष रहे, तो सावित्री ने तीन रात्रियों का कठोर व्रतोपवास धारण कर लिया और वह निमिष-मात्र भी नहीं सोई। रात भर उसकी आँखों में नींद न थी, उसका हृदय रो रहा था और आर्तस्वर में वह प्रभु की आराधना करती रही। अन्त में, उस भयकारक दिवस का प्रभात आ ही पहुँचा। उस दिन एक क्षण भी सावित्री ने सत्यवान को अपनी आँखों से ओट नहीं होने दिया। जब वह ईंधन लाने बाहर जाने लगा, तो वह भी माता-पिता से अनुमति की याचना कर उसके साथ-साथ गई। अचानक लड़खड़ाते स्वर में सत्यवान ने मूर्छित होते हुए कहा, "प्रिये, मुझे चक्कर आ रहा है, मेरी ज्ञानेन्द्रियाँ अवसन्न हो रही हैं; मेरी सारी देह निद्राभिभूत हो रही है, मुझे अपने समीप थोड़ा सा आराम करने दो।" भयाक्रान्त हो कम्पित स्वर में सावित्री बोली, "मेरे जीवन-धन, अपना सिर मेरी गोद में रखकर विश्राम कीजिए।" सत्यवान ने अपना ताप-तप्त सिर अपनी पत्नी की गोद में रखा, और एक दीर्घ श्वास लेते ही उसके प्राण-पखेरू उड़ गए। सावित्री ने उसके शव को हृदय से लगा लिया और अश्रुपूर्ण नयनों से वह उस निर्जन वन में अकेली बैठी रही।

अब यमदूत सत्यवान की आत्मा को ले जाने वहाँ आए;

करेगी; और यह सनातन नियम है कि पतिव्रता स्त्री और पत्नीव्रत पति में कभी वियोग नहीं होता।" तब मृत्युदेवता प्रसन्न हो बोले, "पुत्री, अपने पति के जीवन के अतिरिक्त मुझसे कोई भी वर माँग लो।" सावित्री ने कहा, "यदि आपकी इतनी कृपा है, तो हे मृत्युदेव, मेरे श्वसुर दृष्टि-लाभ पा सुखी रहें।" "तथास्तु, पुत्री" कहकर यमराज सत्यवान की आत्मा लिए मार्ग-क्रमण करने लगे। उन्हें फिर पीछे वैसी ही पद-ध्वनि सुनाई दी। पीछे घूमकर वे बोले, "पुत्री, तुम अब भी मेरा पीछा कर रही हो!" "हाँ पितृवर," सावित्री बोली, "मैं बरबस पीछे-पीछे खिंची चली आ रही हूँ। मैं अपनी पूर्ण शक्ति लगाकर लौट जाने का प्रयत्न कर रही हूँ, किन्तु मेरा मन मेरे पति के पीछे जा रहा है और शरीर उसका अनुसरण कर रहा है। मेरी आत्मा तो पहले ही चली गई है, क्योंकि मेरे स्वामी की आत्मा में मेरी भी आत्मा अवस्थित है; और जहाँ आत्मा जायगी, वहीं शरीर भी जायगा—यही नियति है।" इस पर यम बोले, "सावित्री, मैं तुम्हारी वाणी से अत्यन्त प्रसन्न हूँ। अपने स्वामी का जीवन-दान छोड़कर तुम पुनः एक वर माँगो।" सावित्री बोली, "पिताजी, यदि आप प्रसन्न हैं, तो मेरे श्वसुर को अपना हारा हुआ राज्य वापस मिल जाय।" यम बोले, "वत्से, यह वर भी मैं तुम्हें देता हूँ—और अब तुम घर लौट जाओ; क्योंकि देह-धारी यमराज के साथ नहीं चल सकते।" यम फिर चलने लगे, किन्तु शीलवती और पतिपरायणा सावित्री ने अब भी अपने मृत पति के पीछे चलना नहीं छोड़ा। यम ने फिर पीछे फिरकर उससे कहा, "हे मनस्विनी, हे सावित्री, इस प्रकार शोकाकुल हो पीछे-पीछे मत आओ।" सावित्री बोली, "मैं विवश हूँ—

जिधर आप मेरे हृदयधन को ले जायेंगे, उस ओर जाने के सिवाय मेरे पास कोई चारा ही नहीं है।" "तब सावित्री, यदि तेरा पति पापात्मा रहता और नरकगामी होता, तो क्या तू भी उसके साथ नरकवास करती?" सावित्री बोली, "नरक हो या स्वर्ग, मृत्यु हो या जीवन——जहाँ मेरे स्वामी रहेंगे, वहाँ जाने में मुझे प्रसन्नता ही होगी।" यम बोले, "वत्से, तुम्हारी वचनावली अत्यन्त मनोहर और धर्मसंगत है। मैं तुम्हारे शब्दों से अत्यन्त प्रसन्न हूँ। तुम मुझसे एक वर और माँग लो; किन्तु ध्यान रखो, मृत को जीवनदान नहीं मिला करता।" "यदि प्रभु की अनुमति है, तो मुझे वर दें कि मेरे श्वसुर का वंश नष्ट न होने पाए और इस राज्य पर सत्यवान का उत्तराधिकार सत्यवान के पुत्रों को प्राप्त हो।"

यमराज मुस्कराए और बोले, "पुत्री, तुम्हारी अभिलाषा पूर्ण होगी। यह लो सत्यवान की आत्मा——मैं उसे पुनर्जीवन प्रदान करता हूँ। सत्यवान के और तुम्हारे पुत्र ही राज्य-शासन करेंगे। अब घर लौट जाओ। आज प्रेम ने मृत्यु पर विजय पा ली है। नारीरत्न, तुम्हारा प्रेम अप्रतिम है और तुमने यह सिद्ध कर दिया कि मैं——मृत्युदेवता——भी शुद्ध, अपरिवर्तनशील प्रेम की शक्ति के सामने निर्बल हूँ।"

स्त्रियों की शिक्षा

"हम चाहते हैं कि भारत की स्त्रियों को ऐसी शिक्षा दी जाय, जिससे वे निर्भय होकर भारत के प्रति अपने कर्तव्य को भलीभाँति निभा सकें और संघमित्रा, लीला, अहिल्याबाई और मीराबाई आदि भारत की महान् देवियों द्वारा चलाई गई परम्परा को आगे बढ़ा सकें एवं वीरप्रसू बन सकें। भारत की स्त्रियाँ पवित्रता और त्याग की मूर्ति हैं, क्योंकि उनके पास वह बल और शक्ति है, जो सर्वशक्तिमान परमात्मा के चरणों में सम्पूर्ण आत्म-समर्पण से प्राप्त होती है।.. मेरा तो दृढ़ विश्वास है कि धर्म ही शिक्षा का मेरुदण्ड है।"

स्त्रियों की शिक्षा

शिष्य — आजकल स्त्रियों को किस प्रकार की शिक्षा की आवश्यकता है?

स्वामीजी — धर्म, शिल्प, विज्ञान, गृहकार्य, स्वास्थ्य, रन्धन, सीना-पिरोना, आदि सब विषयों का स्थूल मर्म सिखलाना उचित है। नाटक और उपन्यास तो उनके पास तक पहुँचने ही न चाहिए। 'महाकाली पाठशाला' कई बातों मे ठीक पथ पर चल रही है, किन्तु केवल पूजा-पद्धति सिखलाने से ही काम न बनेगा। सब विषयों में उनकी आँखें खोल देना उचित है। छात्राओं के सामने आदर्श नारी-चरित्र सर्वदा रखकर त्यागरूप व्रत में उनका अनुराग उत्पन्न करना होगा। सीता, सावित्री, दमयन्ती, लीलावती, खना, मीराबाई आदि के जीवनचरित्र कुमारियों को समझाकर उन्हें अपने जीवन को इसी प्रकार गढ़ने का उपदेश देना होगा।

किन्तु स्मरण रहे कि सर्वसाधारण में और स्त्रियों में शिक्षा का प्रसार हुए बिना उन्नति का कोई उपाय नहीं है। इसलिए कुछ ब्रह्मचारी और ब्रह्मचारिणियाँ बनाने की मेरी इच्छा है। ब्रह्मचारीगण समय पर संन्यास लेकर देश-देश, गाँव-गाँव जायँगे तथा सर्वसाधारण में शिक्षा का प्रसार करने का प्रबन्ध करेंगे, और ब्रह्मचारिणियाँ स्त्रियों में विद्या का प्रसार करेंगी; परन्तु यह सब काम अपने ही देश के ढंग पर होना चाहिए। पुरुषों के लिए जैसा शिक्षा-केन्द्र बनाना होगा, वैसा ही स्त्रियों के निमित्त भी करना होगा। शिक्षित और सच्चरित्र ब्रह्मचारिणियाँ इस

केन्द्र में कुमारियों को शिक्षा दिया करेंगी। पुराण, इतिहास, गृहकार्य, शिल्प, गृहस्थी के सारे नियम इत्यादि की शिक्षा वर्तमान विज्ञान की सहायता से देनी होगी तथा आदर्श चरित्र गठन करने के लिए उपयुक्त तत्त्वों की भी शिक्षा देनी होगी। कुमारियों को धर्मपरायण और नीतिपरायण बनाना होगा। जिससे वे भविष्य में अच्छी गृहिणी हों, वही करना होगा। इन कन्याओं से जो सन्तान उत्पन्न होगी, वह इन विषयों में और भी उन्नति कर सकेगी। जहाँ माता शिक्षित और नीतिपरायण है, वहीं बड़े लोग जन्म लेते हैं। वर्तमान समय में तो स्त्रियों को काम करने का यन्त्र-सा बना रखा है। राम! राम!! तुम्हारी शिक्षा का क्या यही फल हुआ? सर्वसाधारण को जगाना होगा; तभी तो भारत का कल्याण होगा।

मेरे जीवन की यही महत्वाकांक्षा है कि इस प्रकार के साधन निर्माण किए जायँ, जिनसे भारत के घर-घर में उच्च और महान् आदर्श पहुँच सकें। उसके उपरान्त स्त्री-पुरुष स्वतः अपने भविष्य का निर्माण कर सकते हैं। प्रत्येक भारतीय को यह ज्ञान रहे कि जीवन के महान् प्रश्नों पर उसके पूर्वजों और दूसरे राष्ट्रों के विद्वानों के क्या विचार हैं। विशेषतः उसे इस बात का ज्ञान हो कि आज संसार क्या कर रहा है, और फिर वह अपने कार्य की दिशा ठीक करे।

शिष्य — महाराज, भारतवर्ष के इतिहास में बहुत प्राचीन काल से भी स्त्रियों के लिए तो किसी मठ की बात नहीं मिलती। बौद्ध-युग में ही स्त्री-मठों की बात सुनी जाती है। परन्तु उसके परिणामस्वरूप अनेक प्रकार के व्यभिचार होने लगे थे। घोर वामाचार से देश भर गया था।

स्वामीजी --- इस देश में पुरुष और स्त्रियों में इतना अन्तर क्यों समझा जाता है, यह समझना कठिन है। वेदान्त-शास्त्र में तो कहा है, एक ही चित्-सत्ता सर्वभूतों में विद्यमान है। तुम लोग स्त्रियों की निन्दा ही करते हो, परन्तु उनकी उन्नति के लिए तुमने क्या किया, बताओ तो? स्मृति आदि लिखकर, नियम-नीति में आबद्ध करके इस देश के पुरुषों ने स्त्रियों को एकदम बच्चा पैदा करने की मशीन बना डाली है। जगदम्बा की साक्षात् मूर्ति इन स्त्रियों का उत्थान न होने से क्या तुम लोगों की उन्नति सम्भव है?

शिष्य --- महाराज, स्त्री-जाति साक्षात् माया की मूर्ति है। मनुष्य के अधःपतन के लिए ही मानो उनकी सृष्टि हुई है। स्त्री-जाति ही माया के द्वारा मनुष्य के ज्ञान-वैराग्य को आवृत कर देती है। सम्भव है, इसी लिए शास्त्रों ने इंगित किया है कि उनके लिए ज्ञान-भक्ति का लाभ करना अत्यन्त कठिन है।

स्वामीजी --- किस शास्त्र में ऐसी बात है कि स्त्रियाँ ज्ञान-भक्ति की अधिकारिणी नहीं हो सकतीं? भारत के अवनति-काल में जब ब्राह्मण पण्डितों ने ब्राह्मणेतर जातियों को वेद-पाठ का अनधिकारी घोषित किया, तो साथ ही उन्होंने स्त्रियों के भी सभी अधिकार छीन लिए। नहीं तो, वैदिक युग में, उपनिषद् युग में, तू देख, मैत्रेयी, गार्गी आदि प्रातःस्मरणीय स्त्रियाँ ब्रह्मविचार में ऋषितुल्य हो गई थीं। सहस्र वेदज्ञ ब्राह्मणों की सभा में गार्गी ने गर्व के साथ याज्ञवल्क्य को ब्रह्मज्ञान के शास्त्रार्थ के लिए आह्वान किया था। इन सब आदर्श विदुषी स्त्रियों को जब उस समय अध्यात्म-ज्ञान का अधिकार था, तब फिर आज भी स्त्रियों को यह अधिकार क्यों न रहेगा? एक बार जो हुआ है, वह पुनः अवश्य हो सकता

शिष्य — महाराज, प्रथम बार विलायत से लौटकर आपने स्टार थियेटर में भाषण देते हुए तन्त्रों की कितनी निन्दा की थी। अब तंत्रों द्वारा समर्थित स्त्री-पूजा का समर्थन कर आप अपनी ही बात बदल रहे हैं।

स्वामीजी — तंत्रों के वामाचार मत का जो विकृत वर्तमान रूप है, उसी की मैंने निन्दा की थी। तन्त्रोक्त मातृभाव की अथवा यथार्थ वामाचार की मैंने निन्दा नहीं की। भगवती मानकर स्त्रियों की पूजा करना ही तंत्र का उद्देश है। बौद्ध धर्म के अधः-पतन के समय वामाचार घोर दूषित हो गया था। वही दूषित भाव आजकल के वामाचार में विद्यमान है। अभी भी भारत के तंत्रशास्त्र उसी भाव द्वारा प्रभावित हैं। उन सब बीभत्स प्रथाओं की ही मैंने निन्दा की थी — और अभी भी करता हूँ। जिस महामाया का रूपरसात्मक बाह्य विकास मनुष्य को पागल बनाए

* मनु-स्मृति, ३-५६

रखता है, जिस महामाया का ज्ञान-भक्ति-विवेक-वैराग्यात्मक अन्तर्विकास मनुष्य को सर्वज्ञ सिद्धसंकल्प, ब्रह्मज्ञ बना देता है, उस महामाया की प्रत्यक्ष मूर्ति इन स्त्रियों की पूजा करने का निषेध मैंने कभी नहीं किया। 'सैषा प्रसन्ना वरदा नृणां भवति मुक्तये'— इस महामाया को पूजा, प्रणाम द्वारा प्रसन्न न कर सकने पर क्या मजाल है कि ब्रह्मा, विष्णु तक उनके पंजे से छूटकर मुक्त हो जायँ? गृहलक्ष्मियों की पूजा के उद्देश से, उनमें ब्रह्मविद्या के विकास के निमित्त, उनके लिए मठ बनवाकर जाऊँगा।

शिष्य—हो सकता है कि आपका यह संकल्प अच्छा है; परन्तु स्त्रियाँ कहाँ से मिलेंगी? समाज के कड़े बन्धन के रहते कौन कुलवधुओं को स्त्री-मठ में जाने की अनुमति देगा?

स्वामीजी—क्यों रे? अभी भी श्रीरामकृष्ण की कितनी ही भक्तिमती लड़कियाँ हैं। उनसे स्त्री-मठ का प्रारम्भ करके जाऊँगा। श्रीमाताजी * उनका केन्द्र बनेंगी। श्रीरामकृष्ण देव के भक्तों की स्त्री-कन्याएँ आदि उसमें पहले-पहल निवास करेंगी, क्योंकि वे इस प्रकार स्त्री-मठ की उपकारिता आसानी से समझ सकेंगी। उसके बाद उन्हें देखकर अन्य गृहस्थ लोग भी इस महत्कार्य के सहायक बनेंगे।

शिष्य—श्रीरामकृष्ण के भक्तगण इस कार्य में अवश्य ही सम्मिलित होंगे; परन्तु साधारण लोग भी इस कार्य में सहायक होंगे, ऐसा तो प्रतीत नहीं होता।

स्वामीजी—जगत् का कोई भी महान् कार्य त्याग के बिना नहीं हुआ है। वटवृक्ष का अंकुर देखकर कौन समझ सकता है कि समय आने पर वह एक विराट् वृक्ष बनेगा? अभी तो

* भगवान श्रीरामकृष्ण देव की धर्मपत्नी।

इसी रूप में मठ की स्थापना करूँगा। फिर देखना, एकाध पीढ़ी के बाद दूसरे सभी देशवासी इस मठ की कद्र करने लगेंगे। ये जो विदेशी स्त्रियाँ मेरी शिष्या बनी हैं, ये ही इस कार्य में जीवन उत्सर्ग करेंगी। तुम लोग भय और कापुरुषता छोड़कर इस महान् कार्य में लग जाओ और इस उच्च आदर्श को सभी के सामने रखो। देखना, समय पर इसकी प्रभा से देश उज्ज्वल हो उठेगा।

शिष्य —— महाराज, स्त्रियों के लिए आप किस प्रकार मठ बनाना चाहते हैं ? कृपया विस्तार के साथ मुझे बतलाइए। मैं सुनने के लिए विशेष उत्कण्ठित हूँ।

स्वामीजी —— गंगाजी के उस पार एक विस्तृत भूमि-खण्ड लिया जायगा। उसमें अविवाहित बालिकाएँ रहेंगी तथा विधवा ब्रह्मचारिणियाँ भी रहेंगी। साथ ही गृहस्थ-घर की भक्तिमती स्त्रियाँ भी बीच-बीच में आकर ठहर सकेंगी। इस मठ से पुरुषों का किसी प्रकार सम्बन्ध न रहेगा। पुरुष-मठ के वृद्ध साधुगण दूर से स्त्री-मठ का काम चलाएँगे। स्त्री-मठ में लड़कियों का एक स्कूल रहेगा। उसमें धर्मशास्त्र, साहित्य संस्कृत, व्याकरण और साथ ही थोड़ी बहुत अंग्रेजी भी सिखाई जायगी। सिलाई का काम, रसोई बनाना, घर-गृहस्थी के सभी नियम तथा शिशु-पालन के मोटे-मोटे विषयों की भी शिक्षा दी जायगी। साथ ही जप, ध्यान, पूजा ये सब तो शिक्षा के अंग रहेंगे ही। जो स्त्रियाँ घर छोड़कर हमेशा के लिए वहाँ रह सकेंगी, उनके भोजन-वस्त्र क प्रबन्ध मठ की ओर से किया जायगा। जो ऐसा नहीं कर
इस मठ में दैनिक छात्राओं के रूप में आकर अध्ययन
दि सम्भव होगा, तो मठ के अध्यक्ष की अनुमति से

वे यहाँ पर रहेंगी और जितने दिन रहेंगी, भोजन भी पा सकेंगी। स्त्रियों से ब्रह्मचर्य का पालन कराने के लिए वृद्ध ब्रह्मचारिणियाँ छात्राओं की शिक्षा का भार लेंगी। इस मठ में ५-७ वर्ष तक शिक्षा प्राप्त कर लड़कियों के अभिभावकगण उनका विवाह कर दे सकेंगे। यदि कोई अधिकारिणी समझी जायगी, तो अपने अभिभावकों की सम्मति लेकर वह यहाँ पर चिर कौमार्य व्रत का पालन करती हुई ठहर सकेगी। जो स्त्रियाँ चिर कौमार्य व्रत का अवलम्बन करेंगी, वे ही समय पर इस मठ की शिक्षिकाएँ तथा प्रचारिकाएँ बन जायेंगी और गाँव-गाँव, नगर-नगर में शिक्षा-केन्द्र खोलकर स्त्रियों की शिक्षा के विस्तार की चेष्टा करेंगी। चरित्रशील, धार्मिक-भाव-सम्पन्न उस प्रकार की प्रचारिकाओं के द्वारा देश में यथार्थ स्त्री-शिक्षा का प्रसार होगा। वे स्त्री-मठ के सम्पर्क में जितने दिन रहेंगी, उतने दिन तक ब्रह्मचर्य की रक्षा करना इस मठ का अनिवार्य नियम होगा।

धर्मपरायणता, त्याग और संयम यहाँ की छात्राओं के अलकार होंगे और सेवा-धर्म उनके जीवन का व्रत होगा। इस प्रकार आदर्श जीवन देखने पर कौन उनका सम्मान न करेगा और कौन उन पर अविश्वास करेगा? देश की स्त्रियों का इस प्रकार जीवन गठित हो जाने पर तभी तो तुम्हारे देश में सीता, सावित्री, गार्गी का फिर से आविर्भाव हो सकेगा? देशाचार के घोर बन्धन से प्राणहीन, स्पन्दनहीन बनकर तुम्हारी लड़कियाँ कितनी दयनीय बन गई हैं, यह तू एक बार पाश्चात्य देशों की यात्रा कर लेने पर ही समझ सकेगा। स्त्रियों की इस दुर्दशा के लिए तुम्हीं लोग जिम्मेदार हो। देश की स्त्रियों को फिर से जागृत करने का भार भी तुम्हीं पर है। इसी लिए तो मैं कह रहा हूँ कि

घर काम में लग जा। क्या होगा व्यर्थ में केवल कुछ वेद-वेदान्तादि को रटकर ?

शिष्य — महाराज, यहाँ पर शिक्षा प्राप्त करने के बाद भी यदि लड़कियाँ विवाह कर लेंगी, तो फिर उनमें लोग आदर्श जीवन कैसे देख सकेंगे ? क्या यह नियम अच्छा न होगा कि जो छात्राएँ इस मठ में शिक्षा प्राप्त करेंगी, वे फिर विवाह न कर सकेंगी ?

स्वामीजी — ऐसा क्या एकदम ही होता है रे ? शिक्षा देकर छोड़ देना होगा। उसके पश्चात् वे स्वयं ही सोच-समझकर जो उचित होगा करेंगी। विवाह करके गृहस्थी में लग जाने पर भी वैसी लड़कियाँ अपने पति को उच्च भाव की प्रेरणा देंगी और वीर पुत्रों की जननी बनेंगी। परन्तु यह नियम रखना होगा कि स्त्री-मठ की छात्राओं के अभिभावकगण पन्द्रह वर्ष की अवस्था के पूर्व उनके विवाह का नाम न लेंगे।

शिष्य — महाराज, फिर तो समाज उन सब लड़कियों की निन्दा करने लगेगा। उनसे कोई भी विवाह करना न चाहेगा।

स्वामीजी — क्यों नहीं ? तू समाज की गति को अभी तक समझ नहीं सका है। इन सब विदुषी और कुशल लड़कियों को वरों की कमी न होगी। 'दशमे कन्यकाप्राप्ति' इन सब वचनों पर आजकल समाज नहीं चल रहा है — चलेगा भी नहीं। अभी भी देख नहीं रहा है ?

शिष्य — आप चाहे जो कहें, परन्तु पहले-पहल इसके विरुद्ध एक प्रबल आन्दोलन अवश्य होगा।

स्वामीजी — आन्दोलन का क्या भय है ? सात्त्विक साहस

से किए गए सत्कर्म में बाधा होने पर कार्य करनेवालों की शक्ति और भी जाग उठेगी। जिसमे बाधा नहीं है — विरोध नहीं है, वह मनुष्य को मृत्यु के पथ में ले जाता है। संघर्ष ही जीवन का चिह्न है, समझा?

शिष्य — जी हाँ।

स्वामीजी — परब्रह्म-तत्त्व मे लिंगभेद नहीं है। हमे 'मैं-तुम' की भूमि में ही लिंगभेद दिखाई देता है। मन जितना ही अन्तर्मुख होता जाता है, उतना ही वह भेद-ज्ञान लुप्त होता जाता है। अन्त में, जब मन एकरस ब्रह्म-तत्त्व मे डूब जाता है, तब यह स्त्री, वह पुरुष — ऐसा भेद-ज्ञान बिलकुल नही रह जाता। हमने श्रीरामकृष्ण में यह भाव प्रत्यक्ष देखा है। इसी लिए मैं कहता हूँ कि स्त्री-पुरुषों में बाह्य भेद रहने पर भी स्वरूप में कोई भेद नही है। अतः यदि पुरुष ब्रह्मज्ञ बन सके, तो स्त्रियाँ ब्रह्मज्ञ क्यों नही बन सकेंगी? इसी लिए कह रहा था, स्त्रियों में समय आने पर यदि एक भी ब्रह्मज्ञ बन सकी, तो उसकी प्रतिभा से हजारों स्त्रियाँ जाग उठेंगी और देश तथा समाज का बहुत कल्याण होगा, समझा?

शिष्य — महाराज, आपके उपदेश से आज मेरी आँखें खुल गई हैं।

स्वामीजी — अभी क्या खुली हैं? जब सब कुछ उद्भासित करनेवाले आत्मतत्त्व को प्रत्यक्ष करेगा, तब देखेगा, यह स्त्री-पुरुष के भेद का ज्ञान एकदम लुप्त हो जायगा; तभी स्त्रियाँ ब्रह्मरूपिणी ज्ञात होंगी। श्रीरामकृष्ण को देखा है — सभी स्त्रियों के प्रति मातृभाव — फिर वह चाहे किसी भी जाति की कैसी भी स्त्री क्यों न हो। मैंने देखा है न! — इसी लिए मैं

इतना समझाकर तुम लोगों को वैसा बनने के लिए कहता हूँ
और लड़कियों के लिए गाँव-गाँव में पाठशालाएँ खोलकर उन्हें
शिक्षित बनाने के लिए कहता हूँ। स्त्रियाँ जब शिक्षित होंगी,
तभी तो उनकी सन्तान द्वारा देश का मुख उज्ज्वल होगा और
देश में विद्या, ज्ञान, शक्ति, भक्ति जाग उठेगी।

शिष्य — परन्तु महाराज, मैं जहाँ तक समझता हूँ, आधु-
निक शिक्षा का विपरीत ही फल हो रहा है। लड़कियाँ थोड़ा-
बहुत पढ़ लेती हैं और बस कमीज-गाऊन पहनना सीख जाती
हैं; त्याग, संयम, तपस्या, ब्रह्मचर्य आदि ब्रह्मविद्या प्राप्त करने
योग्य विषयों में क्या उन्नति हो रही है. यह समझ में नहीं
आता।

स्वामीजी — पहले-पहल उस प्रकार कुछ भूलें हुआ ही
करती हैं। देश में नए भाव का पहले-पहल प्रचार होने के समय
कुछ लोग उस भाव को ठीक ग्रहण नहीं कर सकते। पर इस
विराट् समाज का कुछ नहीं बिगड़ता। फिर भी, जिन लोगों
आधुनिक साधारण स्त्री-शिक्षा के लिए भी प्रारम्भ में उद्यो
किया था, उनकी महानता में सन्देह क्या है? असल बात
है कि शिक्षा हो अथवा दीक्षा — धर्महीन होने पर उसमें त्रु
ह ही जाती है। अब धर्म को केन्द्र बनाकर स्त्री-शिक्षा का
चार करना होगा। धर्म के अतिरिक्त दूसरी शिक्षाएँ गौण
रहेंगी। धर्मशिक्षा, चरित्र-गठन तथा ब्रह्मचर्य-पालन — इन्हीं
के लिए तो शिक्षा की आवश्यकता है। वर्तमान काल में आज
तक भारत में स्त्री-शिक्षा का जो प्रचार हुआ है, उसमें धर्म को
ही गौण बनाकर रखा गया है। तूने जिन सब दोषों का उल्लेख
किया, वे इसी कारण उत्पन्न हुए हैं। परन्तु इसमें स्त्रियों का

क्या दोष हुँ बना ? मरतारकगण स्वयं ब्रह्मचर्य-व्रत का पालन न करते हुए स्त्री-शिक्षा देने के लिए अग्रसर हुए थे, इसी लिए उसमें इस प्रकार की त्रुटियाँ रह गई हैं। सभी सत्कार्यों के प्रवर्तकों को अभीप्सित कार्य के अनुष्ठान के पूर्व कठोर तपस्या की सहायता से स्वयं आत्मज्ञ हो जाना चाहिए, नही तो उनके काम में गलतियाँ निकलेंगी ही। समझा ?

शिष्य — जी हाँ, देखा जाता है, अनेक शिक्षित लड़कियाँ केवल नाटक-उपन्यास पढ़कर ही समय बिताया करती हैं; परन्तु पूर्व-बंग में लड़कियाँ शिक्षा प्राप्त करके भी नाना व्रतों का अनुष्ठान करती हैं। इस भाग में भी क्या वैसा ही करती हैं ?

स्वामीजी — भले-बुरे लोग तो सभी देश तथा सभी जातियों में हैं। हमारा काम है — अपने जीवन में अच्छे काम करके लोगों के सामने उदाहरण रखना। तिरस्कार और निन्दा से कोई काम सफल नहीं होता। इससे तो लोग और भी दूर होते जाते हैं। लोग जो चाहे कहें, विरुद्ध तर्क करके किसी को हराने की चेष्टा न करना। इस माया के जगत् में जो कुछ भी किया जाय, उसमें दोष रहेगा ही — 'सर्वारम्भा हि दोषेण धूमेनाग्निरिवावृता,' — आग रहने से ही धुआँ उठेगा। परन्तु क्या इसी लिए निश्चेष्ट होकर बैठे रहना चाहिए ? नहीं, शक्ति भर सत्कार्य करते ही रहना होगा।

* * * *

"सर्वप्रथम स्त्री-जाति को सुशिक्षित बनाओ, फिर वे स्वयं कहेंगी कि उन्हें किन सुधारों की आवश्यकता है। तुम्हें उनके प्रत्येक कार्य में हस्तक्षेप करने का क्या अधिकार है ?"

"उन्नति के लिए सबसे पहले स्वाधीनता की आवश्यकता

है। यदि तुम लोगों में से कोई यह कहने का साहस करे कि मैं अमुक स्त्री अथवा अमुक लड़के की मुक्ति के लिए काम करूँगा, तो यह अत्यन्त अन्याय और भूल होगी। मुझसे बारम्बार पूछा जाता है कि विधवाओं की और सारी स्त्री-जाति की उन्नति के उपाय के सम्बन्ध में आप क्या सोचते हैं ? मैं इस प्रश्न का अन्तिम उत्तर देता हूँ — क्या मैं विधवा हूँ, जो तुम ऐसा निरर्थक प्रश्न मुझसे पूछते हो ? क्या मैं स्त्री हूँ, जो तुम बार-बार मुझसे यही प्रश्न पूछते हो ? स्त्री-जाति के प्रश्न को हल करने के लिए आगे बढ़नेवाले तुम हो कौन ? क्या तुम हरएक विधवा और हरएक स्त्री के भाग्य-विधाता साक्षात् भगवान हो ? अलग हो जाओ। अपनी समस्याओं की पूर्ति वे स्वयं कर लेंगी। "

विवाह के सम्बन्ध में कुछ विचार

"पावित्र्य और सतीत्व तो भारतीय नारी की वह बहुमूल्य निधि है, जो उसे अतीत काल से परम्परा से प्राप्त हुई है। इसी लिए स्वभावतः वह उसे समझती है। सर्वप्रथम, हमें उनमें इस आदर्श के प्रति प्रगाढ श्रद्धा और भक्ति उत्पन्न करनी चाहिए। यदि वे इस आदर्श पर दृढ़ हो गईं, तो इसके फल-स्वरूप उनका चरित्र इतना बलवान और दृढ होगा कि उसके प्रभाव से वे अपने प्राणों की आहुति देकर भी अपने पावित्र्य एवं सतीत्व की रक्षा करना अपना धर्म समझेंगी — चाहे वे विवाहित हों अथवा अविवाहित रहने का ध्रुव-संकल्प धारण किए हों।"

विवाह के सम्बन्ध में कुछ विचार

प्रश्नकर्ता—स्वामीजी, कृपा कर बालविवाह के सम्बन्ध में अपने विचार स्पष्ट कीजिए।

स्वामीजी—बंगाल के शिक्षित समाज में, लड़कों की बाल्यावस्था में विवाह की प्रथा धीरे-धीरे उठती जा रही है। इसी प्रकार कन्याओं के विवाह की आयु में भी पहले की अपेक्षा दो-एक वर्ष की वृद्धि हो गई है; परन्तु इसमें आर्थिक कारणों का ही विशेष प्रभाव दिखाई देता है। कारण जो कुछ भी रहा हो, अब कन्याओं के विवाह के वय में और भी वृद्धि होने की आवश्यकता है। परन्तु कन्या का बेचारा पिता भी भला क्या करेगा? ज्योंही बालिका कुछ बड़ी हुई कि उसकी माता, सगे-सम्बन्धी और पड़ोसी तक उसके पिता से अनुरोध करना आरम्भ कर देते हैं कि कन्या के लिए शीघ्र वर ढूँढ़े, और जब तक वह बेचारा उनकी इस आशा का पालन नहीं करता, उसे चैन नहीं मिलती! हमारी धर्म-नौका के कर्णधार धर्म-ध्वजी दम्भियों के सम्बन्ध में जितना कम कहा जाय, उतना ही अच्छा। यद्यपि आज उनकी कोई सुनना नहीं चाहता, फिर भी वे अपनी ढपली बजाते ही जाते हैं और समाज का नेतृत्व प्राप्त करने का यत्न करते हैं। जब सरकार ने कानून (Age of Consent Bill) द्वारा किसी पुरुष के लिए बारह वर्ष से छोटी कन्या के साथ सहवास करना दण्डनीय ठहराया, तब इन पोंगा-पंथियों ने बड़ा कोलाहल मचाया कि धर्म भ्रष्ट हो गया, कलियुग आ गया, आदि आदि।

प्रश्नकर्ता —– आपके बताए हुए मार्ग से तो भारतीय नारी के जीवन में एक अभिनव परिवर्तन एव क्रान्ति का सूत्रपात होगा। परन्तु मुझे भय है कि उन्हें इस प्रकार शिक्षित बनाने के लिए बहुत समय लगेगा।

स्वामीजी —– जो भी हो, हमें इस कार्य मे अपनी पूर्ण शक्ति से संलग्न हो जाना चाहिए। हमें न केवल स्त्रियों को ही विद्या-विभूषिता बनाना है, परन्तु स्वयं हमें भी अनेक बातो की शिक्षा प्राप्त करनी है। सन्तानो को केवल उत्पन्न करने से ही पिता का कर्तव्य पूर्ण नही हो जाता; प्रत्युत उसके कधों पर महत्त्वपूर्ण उत्तरदायित्व आ पड़ता है।

अब हम स्त्री-शिक्षा के आरम्भ करने के सम्बन्ध में कुछ विचार करेंगे। पावित्र्य और सतीत्व तो भारतीय नारी की वह बहुमूल्य निधि है, जो उसे अतीत काल से प्राप्त हुई है। इसी लिए स्वभावतः वह उसे समझती है। सर्वप्रथम, हमे उनमे इस आदर्श के प्रति प्रगाढ़ श्रद्धा और भक्ति उत्पन्न करनी चाहिए। यदि वे इस आदर्श पर दृढ हो गई, तो इसके फलस्वरूप उनका चरित्र इतना बलवान और दृढ़ होगा कि उसके प्रभाव से वे अपने प्राणों की आहुति देकर भी अपने पावित्र्य एवं सतीत्व की रक्षा करना अपना धर्म समझेंगी —– चाहे वे विवाहित हों अथवा अविवाहित रहने का ध्रुव-संकल्प धारण किए हो। क्या एक उच्च आदर्श के लिए —– फिर वह आदर्श चाहे कुछ भी हो — अपने जीवन को बाजी लगा देना अत्यन्त वीरतापूर्ण कार्य नही है? युग की आवश्यकताओ को देखते हुए यह भी अत्यावश्यक है कि उनमे से कुछ को त्याग एवं बलिदान के आदर्शो की शिक्षा दी जाय, जिससे वे आजन्म कौमार्य का पुनीत व्रत धारण करें,

और पावित्र्य एवं सतीत्व की उन उदात्त भावनाओं से अनुप्राणित हों, जो अति प्राचीन काल से भारतीय नारी के जीवन की सर्वोच्च निधि रही हैं। साथ ही उन्हें भिन्न-भिन्न प्रकार के उपयोगी विज्ञानों को और गार्हस्थ्य जीवन में दिनों-दिन काम आनेवाले सभी विषयों की शिक्षा भी दी जानी चाहिए, जिससे न केवल उनका ही हित होगा, वरन् वे दूसरों को भी सहायता एवं उपकार कर सकेंगी। मुझे विश्वास है कि अपनी और दूसरों की भलाई करने की भावना से वे इन सब विषयों को बड़े आनन्द से सीखेंगी। हमारी मातृभूमि के कल्याण के लिए आज आवश्यक है कि उसके कुछ पुत्र और पुत्रियाँ पवित्र ब्रह्मचर्यव्रत धारण कर आजीवन देश-सेवा का प्रण लें और अपनी सारी शक्ति मातृभूमि की सेवा में अर्पण कर दें।

प्रश्नकर्ता — ब्रह्मचर्य धारण करने से स्त्रियों का क्या हित होगा ?

स्वामीजी — उनके प्रत्यक्ष उदाहरण से एवं राष्ट्रीय आदर्श का पालन करने के उनके उदात्त प्रयत्नों को देखकर लोगों के विचारों एवं आकांक्षाओं में महती क्रान्ति उपस्थित होगी। आज क्या दशा है? माता-पिता येन-केन-प्रकारेण कन्या को आठ या दस वर्ष की आयु में किसी के गले बाँधकर अपने उत्तरदायित्व से छूटना चाहते हैं! यदि उसे तेरह वर्ष की आयु में ही सन्तान उत्पन्न हो जाय, तो परिवार में आनन्द का सागर उमड़ पड़ता है! यदि हम इस विचारधारा के प्रवाह को परिवर्तित कर सकें, तो जनता में पुनः उस पुरातन श्रद्धा के जागृत होने की कुछ आशा है। यदि कुछ नवयुवक और नवयुवतियाँ उपर्युक्त रीति से ब्रह्मचर्य-व्रत का पालन करें, तो सोचने की बात है, उनमें कितना

आत्मविश्वास एवं श्रद्धा होगी, और वे देश का कितना हित-साधन कर सकेंगे !

यह सब सुनकर प्रश्नकर्ता का हृदय प्रसन्नता एव संतोष से भरा न समाता था, और वे स्वामीजी को प्रणाम कर विदा माँगने लगे। स्वामीजी ने उनसे बीच-बीच में आते रहने के लिए कहा। इसे सहर्ष स्वीकार करते हुए उन्होंने उत्तर दिया, "आज के वार्तालाप से मेरा बड़ा कल्याण हुआ। मैंने आज उन अनेक अभिनव विषयों का ज्ञान प्राप्त किया, जो अन्यत्र कभी सुने भी न थे। मैं अवश्य आया करूँगा।"

* * * *

अब हम बाल-विवाह के कुछ अन्य पहलुओं पर विचार करेंगे। इस समस्या के दूसरे पहलू के पक्ष में यह कहा जा सकता है कि बाल-विवाह से असामयिक सन्तानोत्पत्ति होती है, और अल्पायु में सन्तान धारण करने के कारण हमारी स्त्रियाँ अल्पायु होती हैं, उनकी दुर्बल और रोगी सन्तान देश में भिखारियों की संख्या बढ़ाने का कारण बनती है; क्योंकि यदि माता-पिता बलवान और स्वस्थ न हों, तो उनकी सन्तान कैसे स्वस्थ और शक्तिशाली होगी ? यदि हमारे यहाँ कन्याओं के विवाह कुछ अधिक आयु में हों और उनका लालन-पालन सुसंस्कृत वातावरण में हो, तो वे ऐसी सन्तानों को जन्म देंगी, जिनसे देश का यथार्थ कल्याण हो सकेगा। आज घर-घर इतनी अधिक विधवाएँ पाई जाने का मूल कारण बाल-विवाह ही है। यदि बाल-विवाहों की संख्या घट जाय, तो विधवाओं की संख्या भी स्वयमेव घट जायगी।

सृष्टि में सर्वत्र भले और बुरे का सम्मिश्रण अनिवार्य रूप से पाया जाता है। मेरे विचार से, प्रत्येक देश में समाज

...नी गठन अपनी अन्तर्गत प्रेरणा के अनुसार ही कर लेता है।
...तएव हमें बाल-विवाह-निराकरण, विधवा-विवाह आदि सुधारों
...के सम्बन्ध में अभी माथापच्ची नहीं करना चाहिए। इस सम्बन्ध
में हमारा कर्तव्य यह है कि हम समाज के प्रत्येक घटक को, वह
चाहे स्त्री हो या पुरुष, शिक्षित और सुसंस्कृत बनाएँ। जनता
के इस प्रकार शिक्षित हो जाने पर, वह स्वयं अपने हानि-लाभ
का विचार कर इस प्रकार की कुरीतियों को निकाल बाहर
करेगी। तब दबाव से किसी बात को समाज पर लादने की
आवश्यकता नहीं रह जायगी।

एक ओर नवीन भारत कह रहा है, "हमें पति या पत्नी
के चुनाव में पूर्ण स्वतंत्रता चाहिए, क्योंकि विवाह पर ही हमारे
भावी जीवन का सुखमय अथवा दुःखमय होना निर्भर है। अतः
इस विषय में विवाहेच्छु नवयुवक और नवयुवतियों को अपने
लिए वधू या वर के चुनाव का पूरा-पूरा अधिकार होना चाहिए।"
दूसरी ओर, प्राचीन भारत का आदेश है, "विवाह इन्द्रिय-सुख के
निमित्त नहीं किन्तु मानववंश को आगे चलाने के लिए है।
विवाह का भारतीय आदर्श यही है। सन्तान उत्पन्न करने पर
तुम्हारे ऊपर समाज के भावी हित या अनहित का उत्तरदायित्व
आ पड़ता है। अतः समाज को यह निश्चित करने का अधिकार
है कि तुम किसके साथ परिणय करोगे और किसके साथ
नहीं। समाज में उसी प्रकार के विवाह का प्रसार होता है,
...जसमे समाज का अधिक-से-अधिक कल्याण साधित हो सके;
अतएव तुम्हें समाज और देश के कल्याण-साधन के निमित्त अपने
...वितगत आनन्द और सुख की आहुति देने को सदा तत्पर
...चाहिए।"

उदाहरण के लिए, अपने देश में विधवा-विवाह-निषेध की बात लो। यह न समझो कि इस सम्बन्ध में नियमों को ऋषियों अथवा कुछ दुष्ट व्यक्तियों ने प्रचलित किया है। यह मानते हुए कि पुरुष स्त्री को सर्वदा अपने आधीन रखना चाहता है, हम इससे इनकार नहीं कर सकते कि यदि समय के अनुसार समाज की माँग न होती, तो वे ऐसे नियमों को जारी करने में कभी सफल न हो सकते। इस प्रकार की प्रथा के सम्बन्ध में दो बातें ध्यान देने योग्य हैं:—

(१) विधवा-विवाह निम्न श्रेणी के लोगो में प्रचलित है।
(२) उच्च वर्णों में साधारणतः पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों की संख्या अधिक है।

ऐसी दशा में, यदि प्रत्येक कन्या का विवाह करना हो, तो प्रत्येक के लिए पति प्राप्त करना असम्भव-सा ही है। फिर एक ही स्त्री को एक के बाद दूसरा, इस प्रकार अनेक पति कैसे मिल सकते हैं ? इसलिए समाज ने यह नियम कर दिया है कि जो स्त्री एक बार पति प्राप्त कर चुकी हो, उसे दूसरी बार प्राप्त करने का अधिकार नहीं होगा, क्योंकि यदि वह ऐसा करे, तो एक अन्य कुमारी को बिना पति के ही रहना होगा। इसके विपरीत, विधवा-विवाह उन अनेक जातियो मे प्रचलित है, जिनमें स्त्रियों की अपेक्षा पुरुषों की संख्या अधिक है, क्योंकि ऐसे समाज में उपर्युक्त कठिनाई नही उठती। धीरे-धीरे पाश्चात्य देशों में भी अब अविवाहित लड़कियों को पति प्राप्त करना कठिन होता जा रहा है।

परन्तु आप यह अच्छी तरह समझ ले कि हमारी विवाह-संस्था के पीछे जो भाव हैं, केवल वे ही हमें यथार्थ जीवन-यापन करने

उदाहरण के लिए, अपने देश में विधवा-विवाह-निषेध की बात लो। यह न समझो कि इस सम्बन्ध में नियमों को ऋषियों अथवा कुछ दुष्ट व्यक्तियों ने प्रचलित किया है। यह मानते हुए कि पुरुष स्त्री को सर्वदा अपने आधीन रखना चाहता है, हम इससे इनकार नही कर सकते कि यदि समय के अनुसार समाज की माँग न होती, तो वे ऐसे नियमों को जारी करने में कभी सफल न हो सकते। इस प्रकार की प्रथा के सम्बन्ध मे दो बातें ध्यान देने योग्य हैः—

(१) विधवा-विवाह निम्न श्रेणी के लोगों में प्रचलित है।

(२) उच्च वर्णों में साधारणतः पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों की सख्या अधिक है।

ऐसी दशा में, यदि प्रत्येक कन्या का विवाह करना हो, तो प्रत्येक के लिए पति प्राप्त करना असम्भव-सा ही है। फिर एक ही स्त्री को एक के बाद दूसरा, इस प्रकार अनेक पति कैसे मिल सकते हैं ! इसलिए समाज ने यह नियम कर दिया है कि जो स्त्री एक बार पति प्राप्त कर चुकी हो, उसे दूसरी बार प्राप्त करने का अधिकार नहीं होगा, क्योंकि यदि वह ऐसा करे, तो एक अन्य कुमारी को बिना पति के ही रहना होगा। इसके विपरीत, विधवा-विवाह उन अनेक जातियों में प्रचलित है, जिनमें स्त्रियों की अपेक्षा पुरुषों की सख्या अधिक है, क्योंकि ऐसे समाज में उपर्युक्त कठिनाई नहीं उठती। धीरे-धीरे पाश्चात्य देशों में भी अब अविवाहित लड़कियों को पति प्राप्त करना कठिन होता जा रहा है।

परन्तु आप यह अच्छी तरह समझ लें कि हमारी विवाह के पीछे जो भाव हैं, केवल वे ही हमें यथार्थ जीवन-यापन

में सहायता प्रदान कर सकते हैं—उन्हीं से यथार्थ सभ्यता का प्रसार हो सकता है। इसके अतिरिक्त उन्नति का अन्य कोई मार्ग नहीं। यदि प्रत्येक स्त्री-पुरुष को वर-वधू चुनने की पूर्ण स्वतंत्रता दे दी जाय, और उसे अपने वैयक्तिक सुख एवं पाशविक वासनाओं की तृप्ति के लिए समाज में मनमानी करने दी जाय, तो इसका परिणाम बड़ा भयानक होगा, और ऐसे विवाह से जो सन्तान उत्पन्न होगी, वह भी दुष्ट और राक्षसी वृत्ति की होगी। आज संसार के प्रत्येक देश में, एक ओर मनुष्य इस प्रकार की पाशविक सन्तान उत्पन्न कर रहा है, और दूसरी ओर इन पशुसम मनुष्यों पर शासन करने के लिए पुलिस की संख्या को दिन-पर-दिन बढ़ाता जा रहा है! हमारा उद्देश्य उस प्रकार से दुष्टता पर शासन करना नहीं, अपितु दुष्टता के प्रादुर्भाव को ही रोकना है। अतः जब तक कोई मनुष्य समाज में रहना है, उसके विवाह का परिणाम समाज के प्रत्येक व्यक्ति पर होता है, और इसलिए समाज का यह स्वाभाविक अधिकार है कि वह आदेश दे कि तुम अमुक से विवाह करो तथा अमुक से नहीं। इस देश में विवाह-प्रथा के पीछे इस प्रकार के ऊँचे आदर्श रहे हैं; और ये वर-वधू के ज्योतिष-निर्णीत सम्बन्ध के नाम से प्रसिद्ध हैं। मनु का कथन है कि जो सन्तान केवल पाशविक इच्छाओं के फलस्वरूप उत्पन्न होती है, वह आर्य नहीं है। आर्य वही है, जिसका गर्भ में आगमन एवं जिसकी मृत्यु वैदिक विधियों के अनुसार होती है। यह एक कटु सत्य है कि आज इस प्रकार की आर्य-सन्तान की संख्या संसार के सभी देशों में न्यून होती जा रही है, और इसके फलस्वरूप संसार में उस अनाचार और दुष्ट कर्म की वृद्धि हो रही है, जिसके कारण इस युग को कलियुग कहा जाता है।

भारत में भी हम इन प्राचीन वैदिक आदर्शों के अनुकूल आचरण नहीं कर रहे हैं। यह सत्य है कि आज की परिस्थिति में इन समस्त आदर्शों का पूर्ण आचरण करना सम्भव नहीं, तथा यह भी बिलकुल सत्य है कि हम इनमें से कई उच्च आदर्शों की विडम्बना ही कर रहे हैं। यह दुःख के साथ कहना पड़ता है कि न तो आज पूर्वकाल के समान उच्च आचरणवाले माता-पिता ही रह गए हैं, न समाज ही पूर्ववत् शिक्षित है और न समाज का ही व्यक्ति के प्रति अब वह सम्मान तथा प्रेम रह गया है, जो पहले देखा जाता था। परन्तु, आज की जीवनप्रणाली कितनी ही दूषित क्यों न हो, उसका आधारभूत सिद्धान्त बिलकुल मजबूत बना हुआ है। यदि आज यह प्रणाली दूषित हो गई है, तो हमें चाहिए कि उसके मूलभूत सिद्धान्त को लेकर किसी दूसरी अधिक अच्छी प्रणाली का निर्माण करें। मूलभूत सिद्धान्त का नाश क्यों करें? मूलभूत सिद्धान्त तो शाश्वत है और उसे विद्यमान रहना ही चाहिए। हमारा कर्तव्य है कि उसमें देश-काल के अनुसार उचित परिवर्तन कर उसे पुनः नए ढंग से आचरण में लाने का प्रयत्न करें।

भारतीय और पाश्चात्य स्त्रियाँ

"मैंने पृथ्वी के दोनों गोलार्धों का पर्यटन किया है। मेरा तो दृढ़ विश्वास है कि जिस जाति ने सीता को उत्पन्न किया—सम्भव है, यह कल्पना मात्र ही हो—उस जाति में स्त्री-जाति के प्रति इतना अधिक सम्मान एवं श्रद्धा है कि उसकी तुलना विश्व के अन्य किसी भाग से नहीं हो सकती।"

भारतीय और पाश्चात्य स्त्रियाँ

मैं समझता हूँ, प्रत्येक राष्ट्र का यह प्रधान कर्तव्य है कि वह मातृ-शक्ति के प्रति सम्मान के भाव का सपोषण करे। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए वैवाहिक बधन की धार्मिक पवित्रता एव उसकी अच्छेद्यता में दृढ़ विश्वास होना अत्यावश्यक है। इसी साधन से देश पूर्ण पावित्र्य के आदर्श को प्राप्त कर सकता है। रोमन कैथलिक और हिन्दू धर्मावलम्बियों मे विवाह की पवित्रता एवं अच्छेद्यता में विश्वास के कारण ही, इन धर्मों ने प्रचण्ड शक्तिशाली अनेक ब्रह्मचारियो और सती देवियो को जन्म दिया है। एक अरब देशवासी की दृष्टि मे विवाह एक सौदा अथवा बल-प्रयोग से प्राप्त सम्पत्ति है, जिसका विसर्जन इच्छानुसार किया जा सकता है और इसी लिए उनके देश में कुमारीत्व एवं ब्रह्मचर्य की भावना का सर्वथा अभाव है। इसके विपरीत, आधुनिक बौद्ध धर्म मे सन्यासाश्रम का एक खिलवाड़ ही बन गया है, क्योंकि उसका ऐसी अनेक जातियो में प्रचार हुआ, जिनमें अभी तक विवाह-संस्था का विकास ही नही हुआ है।

यह सर्वविदित ही है कि जीवन की महिमा पावित्र्य में ही प्रतिष्ठित है। अतः अत्यन्त गम्भीर विचार के पश्चात् मैं इस निर्णय पर पहुँचा हूँ कि विश्व मे आजीवन पवित्र एवं संयत जीवन व्यतीत करनेवाले कुछ शक्तिमान पुरुषों के निर्माण के लिए यह आवश्यक है कि जन-साधारण में वैवाहिक बन्धन की धार्मिक पवित्रता और अच्छेद्यता का अधिकाधिक प्रसार हो।

मुझे अमेरिका के समान सुसंस्कृत और शिक्षित स्त्रियाँ संसार में और कहीं दृष्टिगोचर नहीं हुई। हमारे देश में अनेक शिक्षित पुरुष मिलेंगे, पर अमेरिका के समान सुशिक्षित स्त्रियाँ आपको कहीं भी कदाचित् ही मिलें। यह एक शाश्वत सत्य है कि जिन गृहों में पवित्र जीवन पाया जाता है, वहाँ स्वयं भगवती लक्ष्मी के रूप में निवास करती हैं। मुझे अमेरिका में सहस्रों स्त्रियाँ मिली हैं, जिनके हृदय हिमखण्ड के समान शुद्ध एवं निष्कलंक हैं। वे कितनी स्वाधीन हैं! उन्हीं स्त्रियों के हाथ में सभी सामाजिक और नागरिक कर्तव्यों की बागडोर रहती है। यहाँ की शालाएँ और विद्यालय स्त्रियों से बिलकुल भरे हुए हैं, परन्तु हमारे देश में स्त्रियों को सड़कों पर अरक्षित नहीं छोड़ा जा सकता। इस देश की स्त्रियों ने मेरे साथ जो सदय व्यवहार किया है, उसका अनुमान करना कठिन है। जिस क्षण मैंने इस महान् देश में पैर रखा, तभी से यहाँ की स्त्रियों ने मेरा घर-घर में स्वागत किया। वे मेरे भोजन और व्याख्यानों का प्रबन्ध करती हैं। वे ही मुझे बाजार-हाट करने के लिए ले जाती हैं, और मेरी सुविधा और आराम के लिए भरसक प्रयत्न करती हैं। उन्होंने मुझ पर जो महान् उपकार किए हैं, उनके लिए मैं सर्वदा उनका कृतज्ञ एवं ऋणी रहूँगा।

क्या आप जानते हैं कि सच्चा 'शक्ति-उपासक' कौन है? सच्चा शक्ति-उपासक वह पुरुष है, जो सर्वशक्तिमान परमात्मा की शक्ति का सर्वत्र अनुभव करता है और प्रत्येक स्त्री में उस शक्ति का प्रकाश देखता है। इस देश में अनेक लोग स्त्रियों को [illegible] ष्ट से देखते हैं। मनु महाराज ने कहा है—

"यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः"

—अर्थात् जिस गृह में नारियों की पूजा की जाती है, वहाँ देवता निवास करते हैं। अमेरिका के पुरुष स्त्रियों के साथ अत्यन्त सम्मानपूर्वक व्यवहार करते हैं, और परिणाम यह है कि वह एक अत्यन्त उन्नतिशील, विद्वान, स्वतन्त्र और बलवान राष्ट्र हो उठा है। क्या कारण है कि हमारे देशवासी आज तक दासतापूर्ण, आपद्ग्रस्त और मृतप्राय बने हुए हैं? इसका उत्तर स्पष्ट है।

अमेरिका की ललनाओं का जीवन कितना शुद्ध, पवित्र और सरल है! २० या २५ वर्ष की आयु के पूर्व यहाँ कुछ ही स्त्रियों का विवाह होता है, और वे आकाश-विहारी पक्षियों की भाँति स्वतन्त्रता से विचरण करती हैं। वे बाजार-हाटों, शालाओं और महाविद्यालयों में जाती हैं, जीविकोपार्जन करती हैं, तथा सभी प्रकार के काम-धंधे देखती हैं। उनमें जो सम्पत्तिवान हैं, वे गरीबों की सहायता और सेवा में जीवन व्यतीत करती हैं। भारतवर्ष में क्या स्थिति है? यहाँ नियमित रूप से कन्याओं का विवाह ग्यारह वर्ष की आयु में कर दिया जाता है, जिससे वे कहीं भ्रष्ट या दुश्चरित्र न बन जायँ। इस सम्बन्ध में मनु महाराज का क्या आदेश है? "कन्याओं का पालन और शिक्षण उतनी ही सावधानी से करना चाहिए, जितना पुत्रों का।" जिस प्रकार पुत्रों का विवाह तीस वर्ष की आयु तक ब्रह्मचर्य-पालन और शिक्षा ग्रहण करने के उपरान्त करना चाहिए, उसी प्रकार कन्याओं को भी ब्रह्मचर्य-पालन करना चाहिए और माता-पिता को चाहिए कि वे उन्हें भी शिक्षित करें। परन्तु वास्तव में हम कर क्या रहे हैं? क्या हम अपनी स्त्रियों की अवस्था को सुधारना चाहते हैं? यदि हम ऐसा करें, तो हमारा कल्याण होने की सम्भावना है। अन्यथा हम अवनत दशा में रहेंगे, जिसमें आज पड़े हुए हैं।

मुझे अमेरिका के समान सुसंस्कृत और शिक्षित स्त्रियाँ संसार में और कहीं दृष्टिगोचर नहीं हुईं। हमारे देश में अनेक शिक्षित पुरुष मिलेंगे, पर अमेरिका के समान सुशिक्षित स्त्रियाँ आपको कहीं भी कदाचित् ही मिलें। यह एक शाश्वत सत्य है कि जिन गृहों में पवित्र जीवन पाया जाता है, वहाँ स्वयं भगवती लक्ष्मी के रूप में निवास करती हैं। मुझे अमेरिका में सहस्रों स्त्रियाँ मिली हैं, जिनके हृदय हिमखण्ड के समान शुद्ध एवं निष्कलंक हैं। वे कितनी स्वाधीन हैं! उन्हीं स्त्रियों के हाथ में सभी सामाजिक और नागरिक कर्तव्यों की बागडोर रहती है। यहाँ की शालाएँ और विद्यालय स्त्रियों से बिलकुल भरे हुए हैं, परन्तु हमारे देश में स्त्रियों को सड़कों पर अरक्षित नहीं छोड़ा जा सकता। इस देश की स्त्रियों ने मेरे साथ जो सदय व्यवहार किया है, उसका अनुमान करना कठिन है। जिस क्षण मैंने इस महान् देश में पैर रखा, तभी से यहाँ की स्त्रियों ने मेरा घर-घर में स्वागत किया। वे मेरे भोजन और व्याख्यानों का प्रबन्ध करती हैं। वे ही मुझे बाजार-हाट करने के लिए ले जाती हैं, और मेरी सुविधा और आराम के लिए भरसक प्रयत्न करती हैं। उन्होंने मुझ पर जो महान् उपकार किए हैं, उनके लिए मैं सर्वदा उनका कृतज्ञ एवं ऋणी रहूँगा।

क्या आप जानते हैं कि सच्चा 'शक्ति-उपासक' कौन है? सच्चा शक्ति-उपासक वह पुरुष है, जो सर्वशक्तिमान परमात्मा की शक्ति का सर्वत्र अनुभव करता है और प्रत्येक स्त्री में उस शक्ति का प्रकाश देखता है। इस देश में अनेक लोग स्त्रियों को इसी दृष्टि से देखते हैं। मनु महाराज ने कहा है —

"यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः"

—अर्थात् जिस गृह में नारियों की पूजा की जाती है, वहाँ देवता निवास करते हैं। अमेरिका के पुरुष स्त्रियों के साथ अत्यन्त सम्मानपूर्वक व्यवहार करते हैं, और परिणाम यह है कि वह एक अत्यन्त उन्नतिशील, विद्वान, स्वतन्त्र और बलवान राष्ट्र हो उठा है। क्या कारण है कि हमारे देशवासी आज तक दासतापूर्ण, आपद्ग्रस्त और मृतप्राय बने हुए हैं? इसका उत्तर स्पष्ट है।

अमेरिका की ललनाओं का जीवन कितना शुद्ध, पवित्र और सरल है! २० या २५ वर्ष की आयु के पूर्व वहाँ कुछ ही स्त्रियों का विवाह होता है, और वे आकाश-विहारी पक्षियों की भाँति स्वतन्त्रता से विचरण करती हैं। वे बाजार-हाटों, शालाओं और महाविद्यालयों में जाती हैं, जीविकोपार्जन करती हैं, तथा सभी प्रकार के काम-धंधे देखती हैं। उनमें जो सम्पत्तिवान हैं, वे गरीबों की सहायता और सेवा में जीवन व्यतीत करती हैं। भारतवर्ष में क्या स्थिति है? यहाँ नियमित रूप से कन्याओं का विवाह ग्यारह वर्ष की आयु में कर दिया जाता है, जिससे वे कहीं भ्रष्ट या दुश्चरित्र न बन जायँ। इस सम्बन्ध में मनु महाराज का क्या आदेश है? "कन्याओं का पालन और शिक्षण उतनी ही सावधानी से करना चाहिए, जितना पुत्रों का।" जिस प्रकार पुत्रों का विवाह तीस वर्ष की आयु तक ब्रह्मचर्य-पालन और शिक्षा ग्रहण करने के उपरान्त करना चाहिए, उसी प्रकार कन्याओं को भी ब्रह्मचर्य-पालन करना चाहिए और माता-पिता को चाहिए कि वे उन्हें भी शिक्षित करें। परन्तु वास्तव में हम कर क्या रहे हैं? क्या हम अपनी स्त्रियों की अवस्था को सुधारना चाहते हैं? यदि हम ऐसा करें, तो हमारा कल्याण होने की सम्भावना है। अन्यथा हम अवनत दशा में रहेंगे, जिसमें आज पड़े हुए हैं।

अमेरिका की प्रत्येक स्त्री को इतनी उत्तम शिक्षा प्राप्त होती है, जिसकी कल्पना भी अधिकांश भारतीय स्त्रियों के लिए कठिन है। क्या हम अपनी स्त्रियों को वैसी उच्च कोटि की शिक्षा नहीं दे सकते ? हमारा कर्तव्य है कि इस महान् कार्य को तुरन्त आरम्भ कर दें।

* * * *

न्यूयार्क में भाषण देते हुए एक समय स्वामी विवेकानन्दजी ने कहा था—"मुझे बड़ी प्रसन्नता होगी, यदि भारतीय स्त्रियों की ऐसी ही बौद्धिक प्रगति हो, जैसी इस देश में हुई है; परन्तु वह उन्नति तभी अभीष्ट है, जब वह उनके पवित्र जीवन और सतीत्व को अक्षुण्ण बनाए रखते हुए हो। मैं अमेरिका की स्त्रियों के ज्ञान और विद्वत्ता की बड़ी प्रशंसा करता हूँ, परन्तु मुझे यह अनुचित दिखता है कि आप बुराइयों को भलाइयों का रंग देकर छिपाने का प्रयत्न करें। बौद्धिक विकास से ही मानव का परम कल्याण सिद्ध नहीं हो सकता। भारत में नीतिमत्ता और आध्यात्मिक उन्नति को सर्वोच्च स्थान दिया जाता है। और हम उनकी प्राप्ति के लिए प्रयत्न करते हैं। यद्यपि भारतीय स्त्रियाँ उतनी सुशिक्षित नहीं हैं, फिर भी उनका आचार-विचार अधिक पवित्र होता है।

"प्रत्येक स्त्री को चाहिए कि वह अपने पति के अतिरिक्त सभी पुरुषों को पुत्रवत् समझे। प्रत्येक पुरुष को चाहिए कि वह अपनी पत्नी के अतिरिक्त सभी स्त्रियों को मातृवत् समझे। जब मैं उस आचरण को, जिसे आप वीरता और साधुता के नाम से पुकारते हैं, अपने चारों ओर देखता हूँ, तब मेरा हृदय घृणा से भर जाता है। जब तक आप स्त्री-पुरुष-भेद को भूलकर प्रत्येक

व्यक्ति में मानवता का दर्शन नही करते, तब तक इस देश की स्त्रियों की यथार्थ उन्नति नहीं हो सकती। इस दशा को प्राप्त किए बिना तो आपकी स्त्रियाँ खिलौने से अधिक और कुछ भी नहीं है, और इसी कारण यहाँ इतने विवाह-विच्छेद होते हैं। यहाँ के पुरुष स्त्रियों के सम्मान में झुकते और उन्हें आसन प्रदान करते हैं, परन्तु एक क्षण के उपरान्त वे उनकी चापलूसी करने लगते हैं, वे उनकी सुन्दरता--नख-शिख--की प्रशंसा करना आरम्भ कर देते हैं। आपको ऐसा करने का क्या अधिकार है? कोई पुरुष इतना प्रगल्भ कैसे हो सकता है कि वह एक स्त्री के साथ इस प्रकार का व्यवहार करे? और स्त्रियाँ उसको सहन भी क्यों करती हैं? इस प्रकार के आचरण से मनुष्य के निम्नतर भावों का उद्रेक होता है; उससे उच्च आदर्श की प्राप्ति सम्भव नहीं।

"हमें स्त्री-पुरुष के भेद का चिन्तन न करना चाहिए, पर केवल यही चिन्तन करना चाहिए कि हम सभी मानव हैं और परस्पर एक दूसरे के प्रति सद्व्यवहार और सहायता करने के लिए उत्पन्न हुए हैं। हम यहाँ देखते हैं कि ज्योंही किसी नवयुवक और नवयुवती को अकेले होने का अवसर मिला, त्योंही वह नवयुवक उस नवयुवती के रूप-लावण्य की प्रशंसा आरम्भ कर देता है, और विवाह के पूर्व ही वह दो सौ स्त्रियों से प्रेमाचार कर चुका होता है। मैं यदि इन विवाहेच्छुकों में से एक होता, तो बिना इस सब व्यवहार के ही अपने ... चुन लेता।

... के सम्बन्ध
... का अवसर
... है, यह

केवल मजाक है। उस समय मुझे भी ऐसा प्रतीत हुआ कि यह सब ठीक है। तब से अब तक मुझे बहुत प्रवास करने का अवसर आया है, और मेरा दृढ़ विश्वास हो गया है कि यह अनुचित है, यह अत्यन्त दोषपूर्ण है। केवल आप पाश्चात्यवासी ही अपनी आँखें बंद कर इसे निर्दोष कहते हैं। पाश्चात्य राष्ट्रों का अभी यौवन है, साथ-ही-साथ वे अनभिज्ञ, चंचल और ऐश्वर्यसम्पन्न हैं। इन गुणों में से जब किसी एक के प्रभाव से ही मनुष्य क्या-क्या अनर्थ कर डालता है, तब जहाँ सभी एक साथ विद्यमान हों, वहाँ का तो फिर कहना ही क्या!"

* * * *

भारत में स्त्री-जीवन के आदर्श का आरम्भ और अन्त मातृत्व में ही होता है। प्रत्येक हिन्दू के मन में 'स्त्री' शब्द के उच्चारण से मातृत्व का स्मरण हो आता है। हमारे यहाँ परमात्मा को भी जगन्माता, जगज्जननी आदि नामों से सम्बोधित किया गया है। बाल्यावस्था में प्रत्येक हिन्दू बालक प्रतिदिन प्रातःकाल एक कटोरी में जल भरकर अपनी माता के पास ले जाता है, माता उसमें अपने पैर का अँगूठा डुबा देती है, और पुत्र उस पवित्र जल का पान कर हर्षित होता है।

पाश्चात्य देशों में स्त्री को पत्नी की दृष्टि से देखा जाता है। वहाँ स्त्री में पत्नीत्व की कल्पना की जाती है, परन्तु इसके विपरीत प्रत्येक भारतीय, नारी में मातृत्व की कल्पना करता है। पाश्चात्य देशों में गृह की स्वामिनी और शासिका पत्नी है, भारतीय गृहों में घर की स्वामिनी और शासिका माता है। पाश्चात्य गृह में यदि माता हो भी, तो उसे पत्नी के आधीन ना पड़ता है, क्योंकि गृह-स्वामिनी पत्नी है। हमारे घरों में

माता ही 'सब कुछ है, पत्नी को उसकी आज्ञा का पालन करना ही चाहिए। आदर्श की भिन्नता से दोनों घरों के जीवन में कितना अन्तर हो जाता है !

उपर्युक्त दोनों आदर्शों की गम्भीरतापूर्वक तुलना कीजिए। मैं आपके समक्ष कुछ तथ्य उपस्थित करूँगा, जिससे आप स्वयं इन दोनों के गुण-दोष की विवेचना कर सकें। यदि आप पूछें कि पत्नी के रूप में भारतीय स्त्री का क्या स्थान है, तो इसके प्रत्युत्तर में भारतीय आपसे पूछ सकता है, "माता के रूप में अमेरिकन स्त्री का क्या स्थान है ? उस तपस्विनी एवं ओजस्विनी माता का, जिसने तुम्हें जन्म दिया, तुमने क्या सम्मान किया है ? उस माता का, जिसने हमारे भार को अपने शरीर में नौ मास तक वहन किया — उस माता का, जो हमारे जीवन के लिए यदि अपने प्राणों की आहुति देने की आवश्यकता हो, तो बीस बार भी देने को उद्यत है, तुमने क्या गौरव किया है ? धन्य है माता, जो मेरी दुष्टता पर भी ध्यान न देकर अपने प्रेम की अखण्ड धारा से मुझे आप्लावित करती रहती है। परन्तु तुमने उसे क्या स्थान दिया है ? साधारण सी बात को लेकर विवाह-विच्छेद के लिए न्यायालय का द्वार खटखटानेवाली तुम्हारी उस पत्नी के सामने उसका स्थान कहाँ ? हे अमेरिका की स्त्रियो, तुमने मातृत्व की क्या दुर्दशा कर रखी है !" अति आदरणीय मातृत्व के लिए आपके देश में कोई स्थान नहीं है। मुझे यहाँ वह पुत्र दिखाई नहीं देता, जो कहता हो कि माता का आसन सर्वोच्च है। हमारे देश में तो कोई भी पुरुष यह कभी इच्छा नहीं करता कि उसकी मृत्यु के उपरान्त भी उसकी पत्नी और पुत्र उसकी माता का स्थान लें। यदि हमारी मृत्यु माता के

स्त्री-जीवन के इस आदरणीय स्थान को प्राप्त करने के लिए स्त्री के नारीत्व का पूर्ण विकास होना आवश्यक है। और वह वस्तु, जो नारीत्व को पूर्ण करने के लिए तथा नारी को नारी बनाने के लिए अपेक्षित है—है मातृत्व। मातृपद प्राप्त होते तक उसे अपेक्षा करनी चाहिए, तदुपरान्त उसे उस पद का अधिकार प्राप्त होगा। हिन्दू संस्कृति के अनुसार स्त्री-जीवन का महान् उद्देश्य माता का गौरवमय पद प्राप्त करना ही है, परन्तु आज कितना परिवर्तन हो गया है! मेरे माता-पिता ने कितने दिनों तक भगवान से प्रार्थना की थी कि उन्हें एक सन्तान प्राप्त हो। भारत में माता-पिता प्रत्येक बालक के जन्म के लिए ईश्वर से प्रार्थना-याचना करते हैं। 'आर्य' की परिभाषा लिखते हुए धर्मवेत्ता मनु महाराज कहते है—वही सन्तान आर्य है, जो माता-पिता द्वारा ईश्वर की अभ्यर्थना करने के उपरान्त जन्म लेती है; बिना प्रार्थना के उत्पन्न प्रत्येक सन्तान मानो अधर्म से उत्पन्न सन्तान है। इस प्रकार के सन्तानो से इस संसार मे अधिक क्या आशा की जा सकती है? प्रत्येक बच्चे के लिए माता-पिता को प्रार्थना करनी चाहिए।

अमेरिका की माताओ! इस पर जरा विचार कीजिए! हृदय के अन्तस्तल से जरा सोचिए, क्या आप सचमुच नारी होना चाहती है? इसमें किसी जाति या किसी देश का प्रश्न नहीं—किसी प्रकार के राष्ट्रीय गौरव के मिथ्या गर्व का स्थान नहीं। इस क्षणभंगुर जीवन मे, इस दुःख एवं सन्तापपूर्ण संसार में भला कौन अभिमान कर सकता है? स्रष्टा की अनन्त शक्तियों के समक्ष मानव कितना तुच्छ है! आप सबसे आज मैं एक महत्वपूर्ण प्रश्न पूछना चाहता हूँ। क्या आप अपने बच्चों

के जन्म के लिए ईश्वर से हार्दिक प्रार्थना करती हैं ? क्या आप सब अपनी मातृ-पदवी के लिए ईश्वर के निकट कृतज्ञ हैं ? क्या आप सब यह जानती हैं कि नारी मातृत्व का पद प्राप्त कर पावित्र्यपूर्ण गौरव को प्राप्त करती है ? आप अपना हृदय टटोलें और गंभीर विचार करें। यदि आपको उपर्युक्त विचार पर विश्वास नहीं है, तो आपका विवाह मिथ्या है, आपका नारीत्व निरर्थक है और आपकी शिक्षा एक ढकोसला है। यदि आपके बच्चे प्रार्थना और तपस्या के बिना जन्म लेते हैं, तो वे संसार के लिए शाप सिद्ध होंगे।

आप नारीत्व के भिन्न-भिन्न आदर्शों की तुलना करें। मातृत्व के उपरान्त आपका उत्तरदायित्व अत्यन्त महान् हो जाता है। इसी मातृत्व की नींव पर अपने जीवन का निर्माण कीजिए। क्या आप बतला सकती हैं कि संसार में माता का स्थान इतना ऊँचा क्यों है ? हमारे शास्त्रानुसार माता की महानता इसलिए है कि गर्भ में स्थित बालक पर माता का जो प्रभाव पड़ता है, वही बालक को शुभ या अशुभ प्रवृत्तियुक्त बनाता है, उसे देवता या उसके विपरीत राक्षस के पद पर आसीन करता है। आप सैकड़ों महाविद्यालयों में अध्ययन करें, लाखों ग्रन्थ पढ़ें, संसार के समस्त विद्वानों के संसर्ग का लाभ उठाएँ, परन्तु माता के गर्भ में पड़े उपयुक्त संस्कारों का प्रभाव इनसे कितना ही अधिक कल्याणप्रद है। शास्त्र का मत है कि बालक जन्म से ही देव या असुर पैदा होता है। शिक्षा आदि का स्थान बाद में आता है,—उनका प्रभाव गौण होता है। मातृगर्भ में आपने जो कुछ प्राप्त किया है, वही आपको देव या दानव बनाता है। यदि आपको माता ने रोगी शरीर दिया है, तो कितने ही औषधि-भण्डारों

को खाली कर डालिए, फिर भी क्या आप अपने को स्वस्थ रख सकते हैं? क्या आप एक भी स्वस्थ पुरुष बता सकते हैं, जिसे रोगी, दुर्बल और विषैले रक्तवाले माता-पिता ने जन्म दिया है? एक भी नहीं! हम प्रचण्ड सुप्रवृत्ति या कुप्रवृत्ति के साथ जन्म लेते हैं, हम जन्मजात देव या असुर होते हैं। शिक्षा आदि का प्रभाव गौण ही होता है।

हमारे शास्त्र कहते हैं—बालक का जन्म होने के पूर्व की परिस्थिति एवं वातावरण को पवित्र बनाए रखो। माता की पूजा क्यों की जाती है? इसका कारण यह है कि उसने उत्पन्न होनेवाली सन्तान के लिए अपने को पवित्र बनाया और अनेक प्रकार के तप और व्रत किए। पवित्रता ही भारतीय नारी की अमूल्य निधि है। स्मरण रखिए, भारत में कोई भी स्त्री अपने शरीर को किसी भी व्यक्ति को समर्पण नहीं कर देती, वह उसका अपना हुआ करता है। इंग्लैण्ड में एक नए सुधार के अनुसार स्त्री-पुरुषों को तलाक एवं पुनर्विवाह का वैधानिक अधिकार प्रदान किया गया है, पर कोई भी भारतवासी इस अधिकार का उपयोग करने के लिए उद्यत न होगा। भारतीय स्त्रियाँ अपने पति के साथ शारीरिक मिलन के अवसर पर उच्च एवं पवित्र विचारों की प्राप्ति के लिए कितनी प्रार्थनाएँ और प्रण करती हैं; क्योंकि उनकी दृष्टि में बालक के जन्म के सभी कारण एवं तत्कालीन परिस्थितियाँ मानो जगत्-स्रष्टा परमात्मा की पवित्रतम प्रतीक हैं। इस प्रार्थना से विश्व में उस नए आत्मा का प्रादुर्भाव होता है, जिसमें भले या बुरे संस्कारों की प्रचण्ड शक्ति विद्यमान रहती है। क्या पति-पत्नी का यह मिलन केवल खेल है? क्या यह केवल क्षणिक इन्द्रिय-सुख के लिए ही है?

अशुभ प्रभाव पड़ सकता है। सम्भव है, उनके बच्चे दानव बनें, जो सर्वत्र लूटने-पाटने, डाका डालने, जलाने, हत्या करने और मद्य-पान आदि नीच कर्मों में रत रहें। अतः समाज में रहने पर उन्हें अपना जीवन समाज के हित को देखते हुए ही व्यतीत करना चाहिए — न कि केवल अपने ही स्वार्थ को देखते हुए।

हिन्दू समाज ने जाति की नैतिक पवित्रता का आदर्श ऊँचा रखने के लिए बाल-विवाह की प्रथा प्रचलित की, परन्तु उस प्रथा ने कालान्तर मे जाति को अवनत ही बनाया। किन्तु साथ ही मैं यह अस्वीकार भी नहीं कर सकता कि बाल-विवाह से जाति अधिक नीतिमान तथा पवित्र बनती है। आप इन दोनो मे किसे अधिक उच्च स्थान देंगे? यदि आप राष्ट्र के नैतिक पावित्र्य को अधिक महत्त्व देते हैं, तो बाल-विवाह द्वारा आप राष्ट्र के स्त्री-पुरुषों की शारीरिक शक्ति को क्षीण बना डालते हैं। परन्तु विचार कीजिए, इंग्लैण्ड में बाल-विवाह न प्रचलित होने से उसकी क्या कोई अधिक अच्छी स्थिति है? बिलकुल नही। क्यों? इसलिए कि नैतिक पावित्र्य और सयम ही प्रत्येक राष्ट्र का जीवन है। क्या विश्व का इतिहास हमें यह नही दिखाता कि किसी भी राष्ट्र के पतन का आरम्भ भोगविलास तथा चारित्र्यहीनता की वृद्धि से होता है? यदि किसी प्रकार ये दोष किसी राष्ट्र में प्रविष्ट हो गए, तो फिर उसका सर्वनाश निश्चित है। फिर इन दुखमय उलझनों से मुक्त होने का हमारे पास क्या साधन है? माता-पिता द्वारा अपनी सन्तान के लिए वर-वधू का चुनाव करने से यौवन के क्षणिक आवेश में आकर किए गए विवाहों और तज्जन्य उच्छृंखलता से समाज की रक्षा होती है। भारत की कन्याएँ कहीं अधिक व्यवहारदक्ष और क्षणिक आवेगों से मुक्त होती हैं।

क्या यह केवल पाशविक सुख प्राप्त करने का साधन मात्र है ? भारतीय आदर्श कहता है, नहीं--सहस्र बार नहीं, नहीं !

साथ-ही-साथ हमें एक दूसरे विषय पर भी ध्यान देना चाहिए। हमारे विचार का विषय था कि हमारा आदर्श माता के प्रति प्रेम होना चाहिए,--उस माता के प्रति, जो त्याग, प्रेम और सहिष्णुता की प्रतिमूर्ति है। माता की पूजा करने का मूल कारण यही है। मुझे इस संसार में लाने के लिए उसे कितनी तपस्याएँ करनी पड़ीं, कितना आत्मत्याग करना पड़ा! उसने मुझे जन्म देने के लिए वर्षों अपने शरीर को, मन को, भोजन को, वस्त्रों को, यहाँ तक कि अपनी कल्पनाओं को शुद्ध और पवित्र रखा। यही कारण है कि हम उसे पूज्य मानते हैं। और इसी लिए मातृत्व के साथ पत्नीत्व सम्बद्ध है।

आप पाश्चात्य देशवासी व्यक्तिवादी हैं। आप कोई कार्य इसलिए करते हैं कि वह आपको प्रिय है। आपके मतानुसार मैं यहाँ पर उपस्थित सब लोगों को धक्के मार सकता हूँ। क्यों ? इसलिए कि मुझे यह अच्छा लगता है। मैं इस स्त्री से क्यों विवाह करता हूँ ?--क्योंकि इससे मुझे प्रसन्नता होती है। यह स्त्री मुझसे क्यों विवाह करती है ? --क्योंकि मैं उसे प्रिय हूँ। इस अनन्त विश्व में मैं और मेरी पत्नी बस ये ही दो प्राणी हैं, वह मुझसे परिणय करती है, और मैं उससे; इससे भला अन्य किसी का क्या बनता-बिगड़ता है, इसके लिए अन्य कोई उत्तरदायी नहीं है। बस इतना ही--इससे अधिक आप और कुछ नहीं सोच सकते। कोई भी स्त्री-पुरुष जंगल में जाकर रह सकते हैं, और मनमाना जीवन बिता सकते हैं; परन्तु जब उन्हें समाज में रहना है, तब उनके विवाह का समाज के जीवन पर अत्यन्त शुभ या

अशुभ प्रभाव पड़ सकता है। सम्भव है, उनके बच्चे दानव बनें, जो सर्वत्र लूटने-पाटने, डाका डालने, जलाने, हत्या करने और मद्य-पान आदि नीच कर्मों में रत रहें। अतः समाज में रहने पर उन्हें अपना जीवन समाज के हित को देखते हुए ही व्यतीत करना चाहिए—न कि केवल अपने ही स्वार्थ को देखते हुए।

हिन्दू समाज ने जाति की नैतिक पवित्रता का आदर्श ऊँचा रखने के लिए बाल-विवाह की प्रथा प्रचलित की, परन्तु उस प्रथा ने कालान्तर में जाति को अवनत ही बनाया। किन्तु साथ ही मैं यह अस्वीकार भी नहीं कर सकता कि बाल-विवाह से जाति अधिक नीतिमान तथा पवित्र बनती है। आप इन दोनों में किसे अधिक उच्च स्थान देंगे? यदि आप राष्ट्र के नैतिक पावित्र्य को अधिक महत्त्व देते हैं, तो बाल-विवाह द्वारा आप राष्ट्र के स्त्री-पुरुषों की शारीरिक शक्ति को क्षीण बना डालते हैं। परन्तु विचार कीजिए, इंग्लैण्ड में बाल-विवाह न प्रचलित होने से उसकी क्या कोई अधिक अच्छी स्थिति है? बिलकुल नहीं। क्यों? इसलिए कि नैतिक पावित्र्य और संयम ही प्रत्येक राष्ट्र का जीवन है। क्या विश्व का इतिहास हमें यह नहीं दिखाता कि किसी भी राष्ट्र के पतन का आरम्भ भोगविलास तथा चारित्र्यहीनता की वृद्धि से होता है? यदि किसी प्रकार ये दोष किसी राष्ट्र में प्रविष्ट हो गए, तो फिर उसका सर्वनाश निश्चित है। फिर इन दुःखमय उलझनों से मुक्त होने का हमारे पास क्या साधन है? माता-पिता द्वारा अपनी सन्तान के लिए वर-वधू का चुनाव करने से यौवन के क्षणिक आवेश में आकर किए गए विवाहों और तज्जन्य उच्छृंखलता से समाज की रक्षा होती है। भारत की कन्याएँ कहीं अधिक व्यवहारदक्ष और क्षणिक आवेगों से मुक्त होती हैं।

उनका जीवन उतना काव्यमय नहीं रहता। दुनिया के अनुभवों से शून्य होने के कारण जब चंचल यौवन के मद से ग्रस्त नवयुवक और नवयुवतियाँ स्वयं ही अपने पति-पत्नी का चुनाव करती हैं, तब साधारणतः उनके जीवन आनन्दमय सिद्ध नहीं होते। भारतीय नारी सामान्यतः बड़े आनन्द का जीवन व्यतीत करती है, उसका गार्हस्थ्य जीवन सुख-शान्ति से बीतता है; गृह-कलह के उदाहरण कम ही दिखाई देते हैं। इसके विपरीत, संयुक्त-राज्य अमेरिका में, जहाँ प्रत्येक को अपना साथी चुनने की पूर्ण स्वतंत्रता है, गृह-कलह से दुःखी और सुख-शान्ति-विहीन परिवारों की संख्या बहुत अधिक है।

शक्ति की कृपा एवं प्रसन्नता विना कोई भी कार्य नहीं हो सकता। अमेरिका और यूरोप के लोग शक्ति के उपासक हैं। परन्तु वे शक्ति की सच्ची उपासना नहीं जानते। अज्ञान के कारण वे उसकी पूजा इन्द्रिय-तुष्टि द्वारा करते हैं। अतएव कल्पना कीजिए कि इसके विपरीत जो उसकी पूजा अत्यन्त पवित्रतापूर्वक एवं सात्त्विक भाव से करते हैं तथा उसमें मातृत्व का दर्शन करते हैं, उनका कितना अभ्युत्थान एवं कल्याण न होगा!

अतः इस विषय पर गम्भीर विचार करने से हमें भारत के अधःपतन का कारण स्पष्ट दिखाई पड़ने लगता है। हम मनु के उस महान् आदेश की ओर संकेत कर ही चुके हैं कि "विश्व के समस्त दैवी गुण और शक्तियाँ उस गृह, समाज और राष्ट्र में विद्यमान रहती हैं, जहाँ नारी की पूजा होती है।" "यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।" हम भारतवासियों स्त्रियों पर वड़ा अत्याचार किया है। हमारी अवनति का ।८५। यही है कि हम नारी को कीड़े-मकोड़े के समान घृणित

समझते हैं, उसे नरक का द्वार बतलाते है। आश्चर्य है, स्वर्ग और नरक के अन्तर को नही जान सके! "याथातथ्यतोऽ व्यदधात्"—अर्थात् सर्वशक्तिमान परमात्मा प्रत्येक को उस योग्यता के अनुसार पुरस्कार प्रदान करता है। क्या हम अ वकवास से परमात्मा की आँखों में धूल झोंक सकते हैं? श्वे श्वतर उपनिषद् में ऋषि कहते हैं—

"त्वं स्त्री त्वं पुमान् असि, त्व कुमार उत वा कुमा —"परमात्मन्, तुम्ही स्त्री हो, तुम्ही पुरुष का रूप धारण क हो, और तुम्हीं कुमार या कुमारी हो।" इसके विपरीत अ हम केवल चिल्ला रहे हैं—"दूरं अपसर, रे चाण्डाल।" " एषा निर्मिता नारी मोहिनी।"—"ओ, नीच चाण्डाल, दूर भाग "इस ठगनेवाली स्त्री को ईश्वर ने क्यों बनाया?"

यह सब होते हुए भी भारत की इस पवित्र भूमि मे, सी और सावित्री के देश में आज भी स्त्रियों मे वह चरित्र, सेवा-भाव, वह प्रेम, वह दया, वह संतोष और भक्ति पाई ज हैं, जो विश्व मे मुझे कही अन्यत्र दृष्टिगोचर नही हुई। पाश्च देश की नारी में बहुधा नारीत्व का सर्वथा अभाव दिखा पुरुषों से होड़ लेने में तल्लीन है। वे यान चलाती हैं, कार्याल में कलम घिसती है, उच्च शिक्षा प्राप्त करती है और सभी प्रक के धंधे करती हैं। केवल भारतीय स्त्री में ही नारीसुलभ ल देखकर हृदय आनन्दित होता है। इतनी गुणसम्पन्न और सुयं स्त्रियों के होते हुए भी भारतवासी स्त्री को उन्नत नहीं क सके! भारत में हमने उसे ज्ञानालोक प्रदान करने का प्र नहीं किया। भारतीय स्त्री को यदि उचित शिक्षा मिले, तो संसार की सर्वश्रेष्ठ आदर्श नारी बन सकती है।

भारतीय स्त्री की वर्तमान स्थिति और उसका भविष्य

भारतीय स्त्री की वर्तमान स्थिति और उसका भविष्य

दो बड़े सामाजिक अनर्थ भारत की प्रगति मे रोड़ा अटका रहे हैं। ये दो कुत्सित अनाचार हैं--स्त्री-जाति के पैरों मे पराधीनता की बेड़ी डाल रखना, और निर्धन जनता को जाति-भेद के नाम पर समस्त मानवी अधिकारो से वचित रखना। समाज के इन महत्त्वपूर्ण अंगो की प्रगति हुए बिना, देश का उन्नतिशील होना असम्भव है। मलाबार प्रान्त की स्त्रियाँ प्रत्येक क्षेत्र में पुरुषो से आगे हैं। वहाँ प्रत्येक घर अत्यन्त स्वच्छ दिखाई देता है, और सबकी अपेक्षा शिक्षा को अधिक प्रोत्साहन दिया जाता है। जब मै उस प्रान्त में गया था, तो मुझे ऐसी अनेक स्त्रियाँ मिली, जो सरलता से संस्कृत मे उत्तम सभाषण करती थीं। भारत के अन्य भागो में दस लाख मे ऐसी एक भी स्त्री नही मिल सकती। इस प्रान्त की उन्नति का और एक कारण है। यह प्रान्त कभी भी पोर्तगालनिवासियों या मुसलमानो द्वारा विजित नहीं हुआ। स्वातन्त्र्य से ही उद्धार एवं उन्नति होती है, पराधीनता और दासता से हीनता की वृद्धि एव पतन होता है।

द्रविड़ जातियों का आगमन मध्य एशिया से हुआ। इनका उद्गम आर्येतर वंशों से है और भारत मे इनका आगमन आर्यों के पूर्व हुआ। इनमें से वे लोग, जो दक्षिण भारत में जा बसे, अत्यन्त सभ्य और सुसंस्कृत थे। उनमें स्त्रियो का स्थान पुरुषों की अपेक्षा ऊँचा था।

ईश्वर ने संसार में प्रत्येक मनुष्य को पुण्य और पाप, भले

और बुरे को पहिचानने की बुद्धि दी है, परन्तु वीर वही है, जो दुःख, भ्रम और भूलों से भरे संसार का निर्भयता से सामना करता है; एक हाथ से दुःखी संसार के आँसू पोंछता है और दूसरे से उसे मुक्ति का मार्ग दिखाता है। विश्व में एक ओर हम मिट्टी के ढेले के समान जड़, अक्रिय, दकियानूसी समाज को देखते हैं, और दूसरी ओर अशान्त, धैर्यहीन और निरन्तर अग्नि उगलनेवाले समाज-सुधारक को। भलाई का रास्ता तो इन दोनों के बीच में से है। जापान में मैंने सुना कि जापानी बालिकाओं का दृढ़ विश्वास है कि गुड़िया को सच्चे हृदय से प्रेम करने पर वह भी चेतन और जीवित हो उठती है। अतएव जापानी बालिकाएँ अपनी गुड़ियों को कभी नहीं फोड़तीं। हे महाभाग भारतवासियो, मुझे भी पूर्ण विश्वास है कि यदि तुम सच्चे हृदय से भारत के कोटिशः जनसमुदाय को प्यार करो, तो वह भी पुनः जीवित और जाग्रत हो सकता है। आज भारत के करोड़ों अभागे लाल धनहीन, वित्तहीन, बुद्धिहीन, अशिक्षित, पतित एवं भूखे रहकर आपसी ईर्ष्या-द्वेष और कलह से नष्ट-भ्रष्ट हो रहे हैं। भारतवर्ष तभी जाग्रत और चेतनापूर्ण हो सकता है, जब इस देश के सहस्रों उदार नवयुवक और नवयुवतियाँ उदात्त भावनाओं से परिपूर्ण हो अपनी सांसारिक लालसाओं और सुख-सम्पदा की कामना को ठुकराकर, अज्ञान और दारिद्र्य के महासागर में गोते खाते हुए इन कोटि-कोटि बन्धुओं का उद्धार करने के लिए कटिबद्ध होकर अपनी सारी शक्ति इस महान् कार्य में लगा दें। मेरे इस तुच्छ और अकिंचन जीवन का अनुभव है कि सद्भावना, सच्चाई, शुद्ध हृदय और प्राणिमात्र के लिए असीम प्रेम में वह [illegible] है, जिसके समक्ष विश्व के समस्त बल घुटने टेक देते हैं।

इस प्रकार के दिव्य गुणों से युक्त एक आत्मा भी पाखण्ड एवं पाशवी वृत्ति से पूर्ण लाखों मनुष्यों के दुष्प्रयत्नों को निष्फल कर सकता है।

* * * *

'प्रबुद्ध भारत' के प्रतिनिधि लिखते हैं—सम्पादक के आदेशानुसार मैं भारतीय स्त्रियों की वर्तमान स्थिति तथा उनके भविष्य के सम्बन्ध में स्वामी विवेकानन्दजी के विचार जानना चाहता था। अतः उनसे भेंट करने का अवसर देख रहा था। उस दिन रविवार था—सवेरे का समय। हिमालय की एक मनोहर उपत्यका में आखिर स्वामीजी से मेरी भेंट हो ही गई। मैंने उनके पास अपना मन्तव्य प्रकट किया। स्वामीजी ने कहा, "आओ, जरा घूम आएँ।" और हम लोग तुरन्त विश्व के उन सुन्दरतम प्राकृतिक दृश्यों के बीच घूमने चल पड़े। कहीं धूप और कहीं छाया से ढके मार्गों से होते हुए हम शान्तिपूर्ण ग्रामों में से होकर चले जा रहे थे। कहीं ग्रामीण बच्चे आनन्द से खेल-कूद रहे थे और कहीं चारों ओर सुनहले खेत लहलहा रहे थे। ऊँचे-ऊँचे वृक्ष ऐसे दीखते थे, मानो नील गगन को भेदकर उसके पार जाना चाहते हों। खेतों में एक ओर कुछ कृषक बालाएँ हाथों में हँसिया लिए शीतऋतु के लिए बाजरी के भुट्टे काटकर एकत्रित कर रही थीं; दूसरी ओर सेवों की एक सुन्दर वाटिका दिखाई देती थी, जिसमें वृक्षों के नीचे आरक्त फलों के ढेर बड़े ही सुहावने लगते थे। अब हम तलहटी पार कर एक विस्तृत मैदान में आ गए, जिसके दूसरी ओर हिमाच्छादित उन्नतमस्तक पर्वत-राज शुभ्र बादलों को भेदकर अभूतपूर्व सुन्दरता से खड़े थे।

लम्बी स्तब्धता के उपरान्त अन्त में स्वामीजी ने शान्ति

भंग करते हुए कहा, "स्त्री-जीवन सम्बन्धी आर्यों और सेमिटिक लोगों के आदर्शों में आकाश-पाताल का अन्तर है। सेमिटिक लोगों में स्त्री की उपस्थिति ईश्वरोपासना के लिए घातक समझी गई है, और उसे कोई भी धार्मिक कृत्य करने का अधिकार नहीं है, यहाँ तक कि भोजन के लिए प्रयुक्त पक्षी को भी काटना उसके लिए निषिद्ध है। इसके विपरीत, आर्यों में एक गृहस्थ अपनी पत्नी के विना कोई भी धार्मिक कर्म नहीं कर सकता।"

स्वामीजी के मुख से इस प्रकार के अद्‌भुत विचार सुनकर मैं तो आश्चर्यान्वित हो गया, और फौरन पूछा, "तो क्या स्वामीजी, हिन्दू धर्म आर्य-धर्म नहीं है?"

स्वामीजी ने बड़ी शान्ति से कहा, "आधुनिक हिन्दू धर्म अधिकांशतः एक पौराणिक धर्म है, जिसका उद्‌गम बौद्धकाल के पश्चात् हुआ है। स्वामी दयानन्द सरस्वती ने एक स्थान पर लिखा है कि यद्यपि गृहस्थाश्रम में वैदिक रीति के अनुसार होनेवाले संस्कार एवं अग्निहोत्र में स्त्री की उपस्थिति अनिवार्य है, तथापि कई स्थानों में प्रचलित रीति के अनुसार वह अपने घर में स्थित शालग्राम शिला या गृहदेवता की मूर्ति को हाथ नहीं लगा सकती, क्योंकि इस प्रकार की पूजा का उद्‌गम पौराणिक काल के उत्तरार्ध में पाया जाता है।"

"अतः आपके अनुसार हमारे देश में पाया जानेवाला स्त्री-पुरुष का भेद पूर्णतः बौद्धधर्म के प्रभाव के कारण है?"

स्वामीजी—"अवश्य, जो कुछ भेद आज पाया जाता है, उसका मूल बौद्ध धर्म में ही वर्तमान है; परन्तु यूरोपीय आलोचना से प्रभावित होकर और उसके फल-स्वरूप भारतीय यूरोपीय संस्कृति में गहरा भेद देखकर हमें यह न समझ

बैठना चाहिए कि भारतीय संस्कृति में स्त्री का अनादर किया गया है। पिछली कई सदियों में भारत की राजनीतिक और सामाजिक स्थिति ऐसी थी कि स्त्रियों को विशेष संरक्षण की आवश्यकता थी। भारतीय स्त्री की वर्तमान दशा का मूलभूत कारण हमारी संस्कृति में स्त्री-जाति की हीनता नहीं, प्रत्युत देश की उपर्युक्त परिस्थिति ही है।"

"स्वामीजी, तो क्या आप भारतीय स्त्री की वर्तमान दशा से पूर्णतः संतुष्ट हैं ?"

स्वामीजी—"कदापि नहीं, परन्तु इस दशा में सुधार का साधन यही है कि हम स्त्रियों को उचित शिक्षा दें, और उसके उपरान्त वे स्वयं अपनी समस्याओं को सुलझा लेंगी। मुझे पूर्ण विश्वास है कि ऐसा करने पर भारतीय स्त्रियाँ अपनी समस्याओं का हल करने में संसार के किसी भी भाग की स्त्रियों से पीछे नहीं रहेंगी। हमें उनकी समस्याओं में हस्तक्षेप करने का कोई अधिकार नहीं।"

"स्वामीजी, क्या आप बतला सकते हैं कि हमारे देश में स्त्रियों की हीनता का प्रादुर्भाव बौद्धधर्म से किस प्रकार हुआ?"

स्वामीजी—"इस हीनता का प्रादुर्भाव बौद्धधर्म के पतन-काल में ही हुआ। कोई भी आन्दोलन किसी एक नवीन विशेषता के कारण संसार में शीघ्र ही फैल जाता है, परन्तु जब उसका पतन होता है, तब उसकी यह अभिमानास्पद विशेषता ही उसकी दुर्बलता का मुख्य कारण बन जाती है। पुरुषश्रेष्ठ भगवान बुद्ध अत्यन्त संगठन-कुशल थे, और इसी कुशलता के कारण उन्होंने संसार को अपनी ओर आकर्षित कर लिया। उनका धर्म भिक्षुओं का धर्म था। और इसी कारण, एक स्वाभाविक दुष्परिणाम यह

हुआ कि प्रत्येक पीत वस्त्रधारी भिक्षु सम्मानास्पद हो गया। उन्होंने पहली बार विहारों के रूप में सामूहिक जीवन की भी प्रतिष्ठा की, जिसका एक अनिवार्य फल यह हुआ कि भिक्षुणियों का स्थान भिक्षुओं की अपेक्षा निम्न हो गया, क्योंकि श्रेष्ठ भिक्षुणी के लिए भी भिक्षु की आज्ञा एवं अनुमति के विना कोई भी महत्त्वपूर्ण कार्य करना निषिद्ध था। इस प्रकार के जीवन से धर्म संगठित तो हो गया, परन्तु अन्ततोगत्वा इसके कुछ परिणाम खेदजनक भी हुए।"

"परन्तु स्वामीजी, संन्यासधर्म तो वेदविहित है।"

स्वामीजी—"अवश्य संन्यास वेद-प्रतिपादित है, परन्तु वैदिक सिद्धान्त के अनुसार संन्यासाश्रम में स्त्री-पुरुष का कोई भेद नहीं रहता। क्या तुम्हें ज्ञात नहीं कि विदेहराज जनक की राजसभा में किस प्रकार धर्म के गूढ़ तत्त्वों पर महर्षि याज्ञवल्क्य से वाद-विवाद हुआ था? इस वाद-विवाद में ब्रह्मवादिनी वाचक्नवी ने प्रधान भाग लिया था। उसने कहा था, 'मेरे दो प्रश्न मानो कुशल धनुर्धारी के हाथ में के दो तीक्ष्ण बाण हैं।' उपनिषद् में जहाँ यह प्रसंग आया है, वहाँ पर उसके स्त्री होने पर कोई बात नहीं उठाई गई है। तुम्हें यह भी विदित होगा कि प्राचीन गुरुकुलों में बालक और बालिकाएँ समान रूप से शिक्षा प्राप्त करते थे। इससे अधिक भला और क्या चाहिए? हमारी संस्कृत

स्वामीजी शान्तिपूर्वक बोले, "सम्भव है, इसका कारण यह हो कि मैंने पृथ्वी के दोनों गोलार्धों का पर्यटन किया है। मेरा तो दृढ़ विश्वास है कि जिस जाति ने सीता को जन्म दिया—भले ही यह कल्पना मात्र हो—उस जाति में स्त्री-जाति के प्रति इतना सम्मान तथा श्रद्धा है कि उसकी तुलना संसार के अन्य किसी भाग से नही हो सकती। पाश्चात्य स्त्रियाँ ऐसे कई कानूनी बन्धनों से जकड़ी हुई हैं, जिनसे भारतीय स्त्रियाँ सर्वथा मुक्त एवं अपरिचित हैं। भारतीय समाज में गुण और दोष दोनों विद्यमान हैं और यही स्थिति पाश्चात्य समाज की भी है। यह तो मानना ही पड़ेगा कि जगत् के सभी भागों में प्रीति, कोमलता और सत्यनिष्ठा को अभिव्यक्त करने का यत्न किया जाता है, और प्रत्येक देश में इन्हे व्यक्त करने की सामाजिक रीतियाँ भिन्न-भिन्न होती हैं। जहाँ तक गार्हस्थ्य जीवन का सम्बन्ध है, मैं बिना किसी सकोच के कह सकता हूँ कि भारतीय प्रणाली में अन्य देशों की अपेक्षा अनेक सद्गुण हैं।"

"स्वामीजी, तो क्या भारतीय स्त्रियों के समक्ष कोई भी समस्याएँ नही है?"

स्वामीजी—"है, अवश्य है, उन्हे कई गभीर समस्याएँ सुलझानी हैं; परन्तु इनमे से एक भी ऐसी नही, जो 'शिक्षा' द्वारा न सुलझाई जा सके। परन्तु सच्ची शिक्षा की धारणा अभी तक हममें से किसी को भी नही।"

"स्वामीजी, शिक्षा की आपकी क्या परिभाषा है?"

स्वामीजी ने स्मित हास्य से कहा, "मैं परिभाषाएँ देने के विरुद्ध हूँ। परन्तु इस सम्बन्ध में यह कहा जा सकता है कि सच्ची शिक्षा वह है, जिससे मनुष्य की मानसिक शक्तियों का

विकास हो। वह शब्दों को रटना मात्र नहीं है। वह व्यक्ति की मानसिक शक्तियों का ऐसा विकास है, जिससे वह स्वयमेव स्वतन्त्रतापूर्वक विचार कर ठीक-ठीक निश्चय कर सके। हम चाहते हैं कि भारत की स्त्रियों को ऐसी शिक्षा दी जाय, जिससे वे निर्भय होकर भारत के प्रति अपने कर्तव्य को भलीभाँति निभा सकें और संघमित्रा, लीला, अहिल्याबाई और मीराबाई आदि भारत की महान् देवियों द्वारा चलाई गई परम्परा को आगे बढ़ा सकें एवं वीरप्रसू बन सकें। भारत की स्त्रियाँ पवित्रता और त्याग की मूर्ति हैं, क्योंकि उनके पास वह बल और शक्ति है, जो सर्वशक्तिमान परमात्मा के चरणों में सर्वस्व अर्पण करने से प्राप्त होती है।"

"स्वामीजी, आपके विचारानुसार शिक्षा में धार्मिक शिक्षा का भी समावेश होना चाहिए?"

स्वामीजी ने गंभीरतापूर्वक उत्तर दिया, "मेरा दृढ़ विश्वास है कि धर्म ही शिक्षा का सार है। हाँ, यह ध्यान रखना आवश्यक है, यहाँ धर्म से मेरा अभिप्राय किसी विशिष्ट धर्म-मत से नहीं है। मैं समझता हूँ, अन्य विषयों के समान अध्यापक को इस सम्बन्ध में भी छात्रा का प्रारम्भिक मार्गदर्शन करना चाहिए और उसे इस योग्य बनाना चाहिए कि वह अपने कम-से-कम विरोधवाले मार्ग पर आगे बढ़ सके।"

"पर धर्म ने ब्रह्मचर्य की जो इतनी प्रशंसा की है, उससे तो ब्रह्मचर्य-व्रत का पालन करनेवाली स्त्री का स्थान माता एवं पत्नी से ऊँचा हो जाता है। क्या यह स्त्री-जाति पर सीधा आघात नहीं है?"

"तुम्हें स्मरण रहना चाहिए कि यदि धर्म स्त्रियों के लिए

ब्रह्मचर्य की उच्चता एवं महानता दिखाता है, तो वह पुरुषों के लिए भी ब्रह्मचर्य की उतनी ही उच्चता और महानता प्रदर्शित करता है। तुम्हारे प्रश्न से यह भी ज्ञात होता है कि तुम्हारे मन में कोई गड़बड़ी मची हुई है। हिन्दू धर्म में मानव का केवल एक ही कर्तव्य बतलाया गया है और वह है——इस अनित्य क्षणभगुर जगत् में नित्य शाश्वत तत्त्व की प्राप्ति। उसकी प्राप्ति के लिए कोई एक निश्चित मार्ग नहीं है। ब्रह्मचर्य हो या विवाह, भला हो या बुरा, विद्या हो या अविद्या——इनमें से कोई भी खराब नहीं, यदि वह मनुष्य को उस ध्येय की ओर ले जाय। यही पर हिन्दू धर्म और बौद्ध धर्म में महान् अन्तर है। हिन्दू धर्म में उस उद्देश्य की प्राप्ति के अनेक मार्ग एवं साधन बतलाए गए हैं, उस निर्दिष्ट स्थान पर पहुँचने के भिन्न-भिन्न मार्गों का विधान है; परन्तु बौद्ध धर्म में जीवन का प्रधान आदेश बाह्य जगत् की क्षणिकता का अनुभव कर लेना ही है, और मोटे रूप से वह केवल एक ही मार्ग द्वारा हो सकता है। क्या तुम्हें महाभारत मे वर्णित युवक योगी की कथा विदित नही, जो क्रोध से उत्पन्न अपनी प्रबल इच्छाशक्ति के प्रभाव से एक कौए और क्रौंच को भस्म कर, अपनी योग-शक्ति पर गर्व करने लगा था? फिर यही योगी एक दिन किसी नगर में पहुँचकर देखता है कि एक स्त्री अपने रोगी पति की सेवा-शुश्रूषा में निरत है, और एक अन्य स्थान में एक धर्मव्याध नामक कसाई मांस-विक्रय कर रहा है, और इन दोनों को ही अपने कर्तव्य का पूर्णतः पालन करने से पूर्ण ज्ञान की प्राप्ति हो चुकी है।"

"अतः स्वामीजी, आपका इस देश की स्त्रियों के लिए क्या संदेश है?"

स्वामीजी --"मेरा तो इस देश की स्त्रियों के लिए वही संदेश है, जो पुरुषों के लिए है। भारत में और भारतीय धर्म में पूर्ण श्रद्धा एवं विश्वास रखो। तेजस्वी बनो, अपने गौरव-शाली भविष्य में विश्वास रखो। अपने जीवन एवं धर्म की महत्ता पर अभिमान रखो, न कि लज्जा। और स्मरण रखो कि हिन्दू जाति को संसार के अन्य देशों से कुछ ग्रहण करना तो अवश्य है, परन्तु उसे संसार को जो देना है, वह लेने की अपेक्षा सहस्रगुना अधिक है।"

परिशिष्ट

भारतीय नारी

(पैसेडेना, कैलिफोर्निया के 'शेक्सपियर क्लब हाउस' में १८ जनवरी १९०० को दिया हुआ भाषण ।)

स्वामी विवेकानन्द — उपस्थित सज्जनों में से कुछ लोग व्याख्यान के पूर्व हिन्दुओं के दर्शनशास्त्र के सम्बन्ध में कुछ प्रश्न पूछना चाहते हैं तथा व्याख्यान के पश्चात् भी भारतवर्ष के सम्बन्ध में साधारण रूप के प्रश्न करना चाहते हैं; किन्तु प्रधान कठिनाई यह है कि मैं यही नहीं जानता कि मुझे किस विषय पर व्याख्यान देना है। हिन्दुओं के दर्शनशास्त्र, अथवा उस जाति, उसके इतिहास या साहित्य से सम्बन्धित किसी भी विषय पर व्याख्यान देने में मुझे बड़ी प्रसन्नता होगी। यदि उपस्थित सज्जनों और महिलाओं में से कोई किसी विषय का निर्देश कर दे, तो विशेष अच्छा होगा।

प्रश्नकर्ता — स्वामीजी, मैं आपसे पूछना चाहता हूँ कि अमेरिका के निवासियों को, जो अत्यन्त व्यवहारनिपुण हैं, आप हिन्दू दर्शनशास्त्र के किस विशेष सिद्धान्त को अपनाने का आदेश देंगे, और ईसाई धर्म की अपेक्षा वह सिद्धान्त हमारा क्या विशेष उपकार करेगा?

व्याख्यान

इस विषय को आरम्भ करने के साथ ही मुझे यह बतला देना चाहिए कि मैं ऐसे आश्रम का मनुष्य हूँ, जिसमें कभी विवाह ही नहीं करते; इसलिए स्त्रियों का प्रत्येक दृष्टिकोण से — माता, स्त्री, कन्या और बहिन रूप से — मेरा ज्ञान अन्य लोगों की तरह पूर्ण नहीं भी हो सकता। फिर, मुझे यह भी न भूलना चाहिए कि भारतवर्ष एक महादेश है, केवल एक देश ही नहीं; और वहाँ विभिन्न जातियाँ वास करती है। यूरोप के विभिन्न राष्ट्र भारतवर्ष की जातियों की अपेक्षा एक दूसरे के अधिक निकट और अधिक समान है। इस बात की मोटे तौर पर धारणा आप इसी से कर सकते है कि सारे भारतवर्ष में आठ विभिन्न भाषाएँ बोली जाती हैं। दस करोड़ मनुष्य हिन्दी बोलते हैं और लगभग छः करोड़ लोग बँगला, इसी प्रकार और भी समझ लीजिए। उत्तर भारतवर्ष की चार भाषाएँ दक्षिण की चार भाषाओं से इतनी भिन्न हैं कि यूरोपीय देशो की भाषाएँ आपस में उतनी भिन्नता नहीं रखतीं! उनमें इतना अन्तर है, जितना आपकी भाषा और जापानी भाषा मे है। इसलिए आपको सुनकर आश्चर्य होगा कि यदि हम दक्षिण भारत मे जायँ, तो जब तक हमें कोई ऐसे व्यक्ति न मिलें, जो संस्कृत जानते हों, तब तक हमे वहाँ के लोगों से अंग्रेजी में बातें करनी पड़ती है। इसके अतिरिक्त, इन विभिन्न जातियों के आचार, रीति-रिवाज, खान-पान, वेश-भूषा और विचारों में भी बहुत अन्तर है।

इसके बाद फिर जातियाँ है। प्रत्येक जाति मानो एक-एक विभिन्न सम्प्रदाय हो गई है। यदि कोई बहुत दिनों तक भारत-

वर्ण में रखे, तो वह शकल देखकर बता सकता है कि अमुक व्यक्ति किस जाति का है। इन जातियों के भी आचार और रीति-रिवाजों में अन्तर है। ये सभी जातियां पृथक्-पृथक् रहती हैं, अर्थात् वे सामाजिक ढंग से आपस में मिलती-जुलती अवश्य हैं, पर आपस में खान-पान या विवाह नहीं करतीं। इन बातों में वे अलग रहती हैं। वे आपस में मिलेंगी-जुलेंगी और उनमें मैत्री भी रहेगी, पर यहीं तक, बस।

यद्यपि दूसरे लोगों की अपेक्षा मुझे, एक धर्मप्रचारक के नाते, भारतीय स्त्रियों के बारे में जानने का साधारणतः अधिक अवसर प्राप्त होता है, फिर भी मेरे लिए यह कहना कि मैं भारतवर्ष की स्त्रियों के सम्बन्ध में सब कुछ जानता हूँ, अतिशयोक्ति होगी। मेरी इस जानकारी का कारण यह है कि मैं बराबर एक स्थान से दूसरी जगह घूमा ही करता हूँ और समाज के हर श्रेणी के लोगों से मिलता-जुलता हूँ, यहाँ तक कि उत्तर भारत की स्त्रियों से भी, जो पुरुषों के सामने नहीं आतीं, पर जो कई स्थानों में धर्म के लिए इस नियम को तोड़कर हमारे सामने आती हैं, हमारे उपदेश सुनती हैं और हमसे बातें करती हैं।

अतएव मैं आप लोगों के सामने भारतीय स्त्रियों के आदर्श को रखने का यत्न करूँगा। प्रत्येक राष्ट्र में पुरुष या स्त्री किसी एक आदर्श को व्यक्त करती है, जिसकी पूर्ति ज्ञात या अज्ञात भाव से होती रहती है। व्यक्तिविशेष अभिप्रेत आदर्श का बाह्य रूप मात्र है। ऐसे व्यक्तियों के समूह को राष्ट्र कहते हैं; और ऐसा राष्ट्र भी किसी महान् आदर्श की ओर लक्ष्य करता है, जिसकी ओर वह राष्ट्र अग्रसर हो रहा है। इसलिए

यह कहना बिलकुल ठीक है कि किसी राष्ट्र को समझने के लिए पहले उसके आदर्श को समझना आवश्यक है, कोई राष्ट्र अपना आदर्श छोड़कर किसी दूसरे आदर्श से जाँचा जाना पसन्द नहीं करता।

सभी उन्नति, प्रगति, भलाई या अवनति सापेक्ष होती है। वह किसी आदर्श की ओर निर्देश कर देती है, और प्रत्येक व्यक्ति की पूर्णता को समझने के लिए उसी आदर्श से उसे जाँचना होगा। ये बातें राष्ट्रविशेष में अधिक स्पष्ट होती हैं। जिसे एक राष्ट्र अच्छा समझता है, सम्भव है, उसे दूसरा अच्छा न समझे। चचेरे भाई-बहिनों में विवाह इस देश में पूर्ण रूप से वैध है। किन्तु भारतवर्ष में यह सिर्फ गैर-कानूनी ही नहीं, वरन् व्यभिचार-सदृश एक बहुत बड़ा अपराध समझा जाता है। विधवा-विवाह यहाँ सर्वथा न्यायसंगत है, किन्तु भारतवर्ष की उच्च श्रेणी की स्त्रियों के लिए दूसरी बार विवाह करना उनका सबसे बड़ा पतन है। अतः देखा आपने, विचारों की इतनी महान् विभिन्नता में रहनेवाले हम लोगों को एक के आदर्श से दूसरे को जाँचना न तो उचित है और न सम्भव ही। इसलिए हमें पहले जान लेना चाहिए कि किस राष्ट्र ने किस आदर्श को अपने समक्ष रखा है। विभिन्न राष्ट्रों के सम्बन्ध में कुछ कहते समय, हम यह पहले से ही मान लेते हैं कि सभी जातियों के लिए एक ही आदर्श और एक ही आचार है। जब हम दूसरों का विचार करने लगते हैं, तब हम मान लेते हैं कि जो हमारे लिए अच्छा है, वह सबके लिए अच्छा होगा; जो हम करते हैं, ठीक करते हैं; और जो कुछ हम नहीं करते, वह यदि दूसरे करते हैं, तो गलती करते हैं। इसे मैं आलोचना के ढंग से नहीं वरन् सच्ची बात बताने के लिए कहता

का एक विशेष कर्तव्य है, उसे मानव-प्रकृति के एक अंश को उन्नत करना है; हमें इन सबको एकत्रित करना होगा। और सम्भवतः सुदूर भविष्य में, विभिन्न जातियों की आश्चर्यजनक जातीय पूर्णताओं का समन्वय होकर एक ऐसी अद्‌भुत नई जाति की उत्पत्ति होगी, जिसकी विश्व ने अभी तक कल्पना ही नहीं की है। यह कहने के अतिरिक्त मुझे किसी की कोई आलोचना नहीं करनी है। मैंने अपने जीवन में कोई थोड़ा भ्रमण नहीं किया; मैंने सदैव अपनी आँखें खुली रखी हैं; जितना ही अधिक मैं विभिन्न देशों से परिचित होता हूँ, उतनी ही मेरी बोली बन्द होती जाती है। मुझे कोई आलोचना नहीं करनी है।

* * * *

मैं उस आश्रम का हूँ, जो बहुत-कुछ आप लोगों के कैथलिक चर्च के पादरियों (Mendicant Friars of the Catholic Church) से मिलता-जुलता है; अर्थात् हमें बिना बहुत-कुछ कपड़ा-लत्ता पहने इधर-उधर जाना पड़ता है; हम लोग दरवाजे-दरवाजे भीख माँगते हैं और उसी से अपनी गुजर करते हैं; आवश्यकता पड़ने पर लोगों को उपदेश देते हैं; जहाँ भी स्थान मिल जाता है, वहीं सो रहते हैं। हमें इसी प्रकार जीवन निर्वाह करना पड़ता है। नियम यह है कि इस आश्रम के सभी लोग प्रत्येक स्त्री को 'माँ' कहकर पुकारें। प्रत्येक स्त्री को ही क्या, हमें तो छोटी लड़की को भी 'माँ' ही कहकर पुकारना पड़ता है; यही नियम है। पाश्चात्य देशों में आने पर भी वही संस्कार बना रहा। जब मैं स्त्रियों से कहता "हाँ माता!" तो वे आश्चर्य-चकित हो जातीं! पहले तो मैं नहीं समझ सका कि उनके इस प्रकार आश्चर्य प्रकट करने का क्या कारण है। बाद में मुझे

हैं। जब पाश्चात्य स्त्रियां चीनी स्त्रियों को पैर बांध रखने के लिए दोषी ठहराने लगती हैं, तो वे भूल जाती हैं कि उसकी अपेक्षा पाश्चात्य देश की अँगिया (Corset) उनकी जाति का कहीं अधिक अनुपकार कर रही है। यह तो केवल एक उदाहरण है। आप समझते ही हैं कि पैर की बाढ़ को रोकना मनुष्य की शकल को लक्षांश भी उतनी हानि नहीं करता, जितनी हानि उस अँगिया द्वारा हुई और हो रही है—उससे शरीर के अवयव विकृत हो जाते हैं और रीढ़ साँप की तरह टेढ़ी हो जाती है। जब नाप-जोख होती है, तो उस टेढ़ेपन को आप अच्छी तरह देख सकते हैं। इसे मैं आलोचना के लिए नहीं कह रहा हूँ, वरन् आपको परिस्थिति समझाने के लिए। आप लोग अपने को सबसे श्रेष्ठ समझते हुए दूसरी जाति की स्त्रियों के प्रति आश्चर्य प्रकट करते हैं; उसी प्रकार वे भी आपके आचार-व्यवहार, रीति-नीति को ग्रहण नहीं करतीं, क्योंकि वे भी आपको आश्चर्य रूप से देखती हैं।

अतएव दोनों ही ओर कुछ भ्रामक धारणाएँ हो गई हैं। सभी के पीछे ज्ञान की एक सर्वसामान्य भूमि है, एक सर्वसामान्य मानवता है, और वही हमारे कार्यों का आधार होना चाहिए। हमें उस पूर्ण और समीचीन मानव-प्रकृति को ढूँढ़ निकालना चाहिए, जो केवल आंशिक रूप से इधर-उधर कार्य कर रही है। किसी व्यक्तिविशेष को प्रत्येक बात की पूर्णता नहीं दी गई है। आपका एक कर्तव्य है; और मेरा, अपने विनम्र ढंग से, कुछ दूसरा; हर एक व्यक्ति अपना-अपना अंश पूरा करता है। इन सब अंशों के एकीकरण से पूर्णता प्राप्त होती है। व्यक्तियों के लिए जो बात सत्य है, वही जातियों के लिए भी। प्रत्येक जाति

का एक विशेष कर्तव्य है, उसे मानव-प्रकृति के एक अंश को उन्नत करना है; हमें इन सबको एकत्रित करना होगा। और सम्भवतः सुदूर भविष्य में, विभिन्न जातियों की आश्चर्यजनक जातीय पूर्णताओं का समन्वय होकर एक ऐसी अद्भुत नई जाति की उत्पत्ति होगी, जिसकी विश्व ने अभी तक कल्पना ही नहीं की है। यह कहने के अतिरिक्त मुझे किसी की कोई आलोचना नहीं करनी है। मैंने अपने जीवन में कोई थोड़ा भ्रमण नहीं किया; मैंने सदैव अपनी आँखें खुली रखी हैं; जितना ही अधिक मैं विभिन्न देशों से परिचित होता हूँ, उतनी ही मेरी बोली बन्द होती जाती है। मुझे कोई आलोचना नहीं करनी है।

* * * *

मैं उस आश्रम का हूँ, जो बहुत-कुछ आप लोगों के कैथलिक चर्च के पादरियों (Mendicant Friars of the Catholic Church) से मिलता-जुलता है; अर्थात् हमें बिना बहुत-कुछ कपड़ा-लत्ता पहने इधर-उधर जाना पड़ता है; हम लोग दरवाजे-दरवाजे भीख माँगते हैं और उसी से अपनी गुजर करते हैं; आवश्यकता पड़ने पर लोगों को उपदेश देते हैं; जहाँ भी स्थान मिल जाता है, वहीं सो रहते हैं। हमें इसी प्रकार जीवन निर्वाह करना पड़ता है। नियम यह है कि इस आश्रम के सभी लोग प्रत्येक स्त्री को 'माँ' कहकर पुकारें। प्रत्येक स्त्री को ही क्या, हमें तो छोटी लड़की को भी 'माँ' ही कहकर पुकारना पड़ता है; यही नियम है। पाश्चात्य देशों में आने पर भी वही संस्कार बना रहा। जब मैं स्त्रियों से कहता "हाँ माता!" तो वे आश्चर्य-चकित हो जातीं! पहले तो मैं नहीं समझ सका कि उनके इस प्रकार आश्चर्य प्रकट करने का क्या कारण है। बाद में मुझे

इसका कारण मालूम हुआ। उस कथन का अर्थ होता है कि वे वृद्धा हैं। भारतवर्ष में स्त्रीत्व मातृत्व का ही बोधक है; मातृत्व में महानता, स्वार्थशून्यता, कष्ट-सहिष्णुता और क्षमा-शीलता का भाव निहित है। पत्नी तो छाया की तरह पीछे चलती है, उसे माता के जीवन का अनुकरण करना पड़ता है, यही उसका कर्तव्य है। किन्तु माता प्रेम का आदर्श होती है। वह परिवार का शासन करती है और उस पर अधिकार रखती है। भारतवर्ष में यदि बालक कोई अपराध करता है, तो पिता ही उसे मारता-पीटता है। माता सदा पिता और बालक में बीच-बिचाव करती है। यहाँ पर ठीक उलटा है। इस देश में बच्चों को मारना-पीटना माताओं का कर्तव्य हो गया है और पिता बीच-बिचाव करता है। आप समझ सकते हैं कि आदर्श की कितनी भिन्नता है। इसे मैं आलोचनात्मक ढंग से नहीं कहता। आप लोग जो करते हैं, अच्छा ही करते हैं; पर हम लोगों को जो सदा से सिखाया गया है, हमें तो उसी का अभ्यास है। कोई भी माता कभी अपने बच्चे को अभिशाप नहीं देती, वह सदा क्षमा ही करती रहती है। 'हमारे स्वर्गस्थ पिता' के बदले में हम सदा 'माता' का ही प्रयोग करते हैं। एक हिन्दू के लिए उस शब्द और उस भाव में अनन्त प्रेम भरा है। इस विनश्वर संसार में ईश्वर का प्रेम पाने के लिए माता का प्रेम सबसे निकटतम साधन है। "हे माता! दया करो, मैं तो कुपुत्र हूँ! माँ, कुपुत्र तो अनेक हुए हैं, किन्तु कुमाता कभी नहीं हुई।"—महान् साधु रामप्रसाद ने यही कहा है।

* * * *

तो फिर भारतीय समाज का आधार क्या है? वह है

जातीय नियम। मैं जाति के लिए पैदा हुआ हूँ, और जाति के लिए जीवित हूँ। यहाँ 'मैं' कहने से मेरा अभिप्राय मुझ स्वयं से नहीं है, क्योंकि संन्यास आश्रम में रहने के कारण मैं इस नियम के बाहर हूँ। मेरा अभिप्राय उन लोगों से है, जो समाज में रहते हैं। जाति में पैदा होने से सारा जीवन जाति के नियमानुसार बिताना होगा। दूसरे शब्दों में, आपके देश की वर्तमान भाषा में यह कहा जा सकता है कि पश्चिमी देशों का व्यक्ति अपने ही लिए पैदा होता है, और हिन्दू अपने समाज के लिए—हाँ, सम्पूर्ण रूप से समाज के लिए। अब, शास्त्रों का कहना है, यदि हम तुम्हें उस स्त्री से विवाह करने की आज्ञा देते हैं, जिसे तुम पसन्द करते हो, और स्त्री को उस पुरुष से विवाह करने की, जिसे वह पसन्द करती है, तो इसका परिणाम क्या होता है? तुम्हें तो प्रेम हो जाता है, किन्तु यदि उस स्त्री का पिता मानसिक या क्षय रोग से पीड़ित हो तब? स्त्री उस पुरुष की शकल देखकर मुग्ध हो जाती है, जिसका पिता एक भयानक शराबी था। तब नियम क्या कहता है? उसका कहना है कि ऐसी परिस्थिति में ये सभी विवाह अनियमित माने जायँगे। शराबी, पागल और क्षय-रोगी पुरुषों के बच्चों का विवाह नहीं किया जा सकेगा। लूले, लँगड़े, कुबड़े और पागलों की सन्तान का विवाह नहीं हो सकेगा—नहीं, कभी नहीं; यही शास्त्रों की आज्ञा है।

मुसलमान लोग अरब से आते हैं और अरब का कानून अपने साथ ले आते हैं; इसलिए अरब की मरुभूमि का कानून हम लोगों पर लाद दिया जाता है। अंग्रेज अपना कानून लेकर आते हैं और जहाँ तक सम्भव होता है, उसे हमारे ऊपर लादने की

चेप्टा करते हैं। हम विजित हैं। वह कहता है कि मैं तुम्हारी वहिन से कल विवाह करूँगा। ऐसी दशा में हम भला क्या कर सकते हैं? हम लोगों के कानून का कहना है कि जो लोग एक ही वंश में उत्पन्न हुए हैं, चाहे उनका सम्बन्ध कितनी ही दूर का क्यों न हो, उन्हें आपस में विवाह नहीं करना चाहिए, ऐसा विवाह गैर-कानूनी है; क्योंकि इससे जाति क्षीण अथवा वाँझ हो जायगी। जाति को ऐसी नहीं होने देना चाहिए। अतएव अपने विवाह में न तो मुझे कुछ वोलने का अधिकार है और न मेरी वहिन को ही। जाति ही इन वातों का निर्णय करती है। हमारा विवाह कभी-कभी वाल्यावस्था में ही हो जाता है। क्यों? जाति का कहना है कि यदि विना उनकी इच्छा के ही उन लोगों का विवाह करना है, तो वाल्यकाल में ही उनका विवाह हो जाना चाहिए, जब उन्हें किसी से प्रेम न हुआ हो। यदि वे लोग बड़े हो जायँगे, तो बालक किसी दूसरी बालिका को पसन्द करेगा, और वालिका किसी दूसरे वालक से प्रेम कर सकती है। इससे कुछ-न-कुछ बुराई हो सकती है। इसलिए जाति का कहना है कि इसे यहीं रोक दो। मैं इस बात की चिन्ता नहीं करता कि मेरी बहिन लूली-लँगड़ी है, देखने में सुन्दर है या कुरूप; वह मेरी वहिन है, वस इतना ही पर्याप्त है। वह मेरा भाई है, वस मुझे इतनी ही जानकारी चाहिए। अतः वे परस्पर प्रेम करेंगे। आप कह सकते हैं कि "इस प्रकार तो नका बहुत-कुछ मजा जाता रहता है—किसी पुरुष का ी स्त्री के और किसी स्त्री का किसी पुरुष के प्रेमपाश में द्ध होने की वह उत्कृष्ट प्रेमतरंग! इस प्रेम में तो कोई रस —भाई-बहिन की तरह एक दूसरे को प्यार करना मानो

उनका कर्तव्य है।" यह चाहे जो हो, पर हिन्दू का कहना है कि हम लोग समाजबद्ध हैं। किसी एक पुरुष या स्त्री के सुख के उन्माद के लिए हम दूसरे सैकड़ों लोगों पर यह दुःख-कष्ट का बोझ नहीं लादना चाहते।

उनका विवाह होता है। स्त्री अपने पति के साथ घर आती है। इसे गौना कहते हैं। छोटी उम्र का विवाह पहला विवाह समझा जाता है, वे अलग-अलग अपने परिवार और माता-पिता के साथ बड़े होते हैं। जब वे बड़े हो जाते हैं, तो एक दूसरा धार्मिक कृत्य होता है, जिसे गौना कहते हैं। तब से वे साथ रहते है, पर पति के माता-पिता के साथ एक ही मकान में। जब वधू माता हो जाती है, तब वह भी अपने समय में घर की मालकिन बन जाती है।

इसके बाद दूसरा विचित्र भारतीय नियम आता है। मैं पहले आप लोगों को बता चुका हूँ कि पहली दो या तीन जातियों की विधवाओं को पुनर्विवाह करने की आज्ञा नहीं है। यदि उनकी इच्छा भी हो, तो भी वे ऐसा नहीं कर सकतीं। अवश्य यह बहुतों पर अत्याचार-जैसा है। सभी विधवाएँ इस नियम को पसन्द करती हों, ऐसा तो नहीं कहा जा सकता; क्योंकि विवाह न करने से ब्रह्मचारिणियों की भाँति जीवन बिताना उनके लिए आवश्यक हो जाता है। ब्रह्मचारिणी को मछली-मांस नहीं खाना चाहिए, शराब नहीं पीनी चाहिए, रंगीन कपड़े नहीं पहिनना चाहिए। इसी प्रकार के और भी बहुत से नियम हैं। हमारा साधुओं का देश है, सदा तपस्या करते रहते हैं, और यह हमें पसन्द भी है। अतः आपने देखा, एक स्त्री न तो शराब पीना पसन्द करती है और न मांस खाना। जब हम लोग विद्यार्थी थे,

तो हम लोगों को यह एक जुल्म-सा मालूम पड़ता था, पर लड़कियों को नहीं। हमारी स्त्रियाँ मांस खाने की वात से नीचता का वोध करती हैं। कुछ जातियों के पुरुष कभी-कभी मांस खा भी लेते हैं, किन्तु स्त्रियाँ नहीं। फिर भी पुनर्विवाह की आज्ञा न पाना अनेक स्त्रियों के लिए जुल्म हो सकता है। मुझे इसका विश्वास है।

किन्तु हमें इसके मूलतत्त्व की ओर ध्यान देना चाहिए। वे विशेष रूप से 'सामाजिक नियमबद्ध' हैं। प्रत्येक देश के उच्च वर्णों में, जैसा आँकड़ों से पता चलता है, पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों की संख्या बहुत अधिक होती है। क्यों? इसलिए कि उच्च वर्णों में स्त्रियाँ पीढ़ी-दर-पीढ़ी सुख से जीवन व्यतीत करती हैं। उन्हें कुछ काम-धाम नहीं करना पड़ता, और शान-शौकत में तो सॉलमन* को भी उनके सामने लज्जित होना पड़ता है! उनकी तो मानो बिल्लियों की तरह नौ जिन्दगियाँ हैं——जैसा भारत में कहा जाता है। और वेचारे लड़के?——वे तो मक्खियों की मौत मरते हैं। हमें आँकड़ों से पता लगता है कि लड़कियाँ बहुत थोड़े समय में लड़कों से संख्या में आगे बढ़ जाती हैं। आज भले ही वैसा न हो, क्योंकि आजकल वे भी लड़कों की भाँति कठिन-से-कठिन काम कर रही हैं। उच्च वर्णों में लड़कियों की संख्या निम्न वर्णों की अपेक्षा वहुत अधिक है। निम्न वर्णों की परिस्थिति विल्कुल भिन्न है। वे सभी कठिन परिश्रम करते हैं, स्त्रियों को तो और भी कठिन परिश्रम करना पड़ता है, क्योंकि उन्हें घर के सव काम-काज भी करने पड़ते हैं। स्मरण रहे, मैं इस वात पर कभी ध्यान न देता, पर एक

* एक राजा का नाम।

अमेरिकन यात्री मार्क ट्वेन भारत के सम्बन्ध में लिखते हैं—"पाश्चात्य देशीय आलोचकों ने हिन्दुओं के रीति-रिवाज के सम्बन्ध में चाहे जो कहा हो, किन्तु मैंने भारतवर्ष में कभी किसी स्त्री को बैल के साथ हल में जोते जाते या कुत्ते के साथ गाड़ी खींचते नहीं देखा, जैसा यूरोप के कुछ देशों में होता है। मैंने भारतवर्ष के खेतों में स्त्रियों को काम करते नहीं देखा। रेल में से देखने पर दोनों ओर साँवले, बिना कपड़ा पहिने मनुष्य और लड़के खेतों में काम करते दिखाई पड़ते हैं, किन्तु एक भी स्त्री दिखाई नहीं पड़ती। मैंने दो घण्टों में एक स्त्री को भी खेत में काम करते नहीं देखा। भारत में सबसे निम्न जाति की स्त्रियाँ भी कोई कठिन काम नहीं करती। दूसरे देश के उसी परिस्थिति-वालों की अपेक्षा उन्हें कम काम करना पड़ता है। और खेत तो वे कभी जोततीं ही नहीं।" फिर भी उच्च वर्ण की स्त्रियों की तुलना में उनका जीवन कठोर होता है। अब समझा आपने! पूर्वोक्त कारण से भारत में, नीच जातियों में, स्त्रियों की अपेक्षा पुरुषों की संख्या बहुत अधिक है। अतएव आप स्वाभाविक रूप से क्या अनुमान करेंगे? यही कि मनुष्यों की संख्या अधिक होने के कारण स्त्रियों को विवाह करने के अधिक अवसर मिलते हैं।

विधवाओं के विवाह न करने का जो प्रश्न है, उसके सम्बन्ध में कहना है:—प्रथम दो वर्णों में स्त्रियों की संख्या पुरुषों की संख्या से बहुत अधिक है, इस से एक दुविधा उत्पन्न हो गई है। या तो विवाह न करनेवाली विधवाओं की समस्या है अथवा नवयुवतियों को पति मिलने के अभाव का प्रश्न है—विधवाओं की समस्या या वयस्क कुमारियों की समस्या! इन्हीं दोनों में से किसी एक पर विचार करना होगा। अब पुनः

इस बात को स्मरण कीजिए कि भारतीयों का मन समाज-प्रिय है। उनका कहना है कि हम विधवाओं की समस्या को इतना महत्त्व नहीं देते। क्यों? "इसलिए कि उन्हें अवसर दिया गया था, उनका विवाह कर दिया गया था। यदि उनका अवसर खो गया, फिर भी यह तो मानना ही पड़ेगा कि उन्हें एक अवसर तो मिला ही था। अतः बैठ जाइए, चुप होकर जरा इन बेचारी गरीब लड़कियों के बारे में विचार कीजिए, जिन्हें विवाह करने का एक भी अवसर न मिला।" मुझे स्मरण है, एक बार आक्सफर्ड स्ट्रीट में, कोई दस बजने के बाद, जितनी स्त्रियाँ वहाँ आ रही थीं, उनमें हजारों बाजार कर रही थीं। उन्हें देखकर एक अमेरिकन पुरुष ने कहा, "हा ईश्वर! इनमें से कितने को पति मिलेंगे, इसका मुझे आश्चर्य है!" अतएव भारतीय मनीषियों ने विधवाओं के प्रति कहा, "तुम्हें तो अवसर दिया गया था, अब हमें इसका बहुत ही अधिक दुःख है कि तुम्हारे ऊपर यह भयंकर वज्रपात हुआ, पर हम अब कुछ नहीं कर सकते; क्योंकि दूसरी कुमारियाँ प्रतीक्षा कर रही हैं।"

अब देखें, धर्म इस पर क्या कहता है। धर्म सान्त्वना लेकर आता है। आप एक बात स्मरण रखें, हमारा धर्म शिक्षा देता है कि विवाह बुरी चीज है और वह कमजोरों के लिए है। यथार्थ धार्मिक स्त्री या पुरुष तो कभी विवाह ही नहीं करेगा। धार्मिक स्त्री कहती है, "परमात्मा ने मुझे अधिक अच्छा अवसर दिया है। अतः मुझे अब विवाह करने की क्या जरूरत? मैं बस ईश्वर की पूजा-अर्चना करूँ, किसी पुरुष से प्रेम करने की क्या जरूरत?" अवश्य उनमें से सभी ईश्वर पर ध्यान नहीं लगा सकतीं। कुछ के लिए तो यह सर्वथा असम्भव हो जाता है और

इसलिए उन्हें कष्ट होता है। किन्तु दूसरी बेचारियों को—कुमारियों को तो उनके लिए कष्ट नहीं होना चाहिए। यही भारतीयों का भाव है। पर इसका निर्णय मैं आप लोगों के ऊपर छोड़े देता हूँ।

इसके बाद हम स्त्री को एक पुत्री के रूप में लेंगे। भारतीय घरों में कन्या एक समस्या है। कन्या और जाति-विभाग मिलकर बेचारे हिन्दू को पीस डालते हैं; क्योंकि कन्या का विवाह अपनी ही जाति में, या यों कहिए, अपनी ही जाति के अन्तर्गत एक ही उपजाति में होना चाहिए। और इसी लिए लड़की का विवाह करने के लिए कभी-कभी तो पिता को भिखारी बन जाना पड़ता है। वर का पिता अपने पुत्र के लिए बहुत अधिक मूल्य माँगता है। इसलिए कन्या के पिता को कभी-कभी अपना सब कुछ बेचकर अपनी कन्या का विवाह करना पड़ता है। यही कारण है कि कन्या हिन्दू-जीवन की एक बड़ी समस्या है। आश्चर्य की बात तो यह है कि संस्कृत में कन्या को 'दुहिता' कहते हैं। इस शब्द की मूल उत्पत्ति इस प्रकार है कि प्राचीन काल में कन्याएँ ही गाएँ दुहा करती थीं। इसलिए 'दुहना' क्रिया से दुहिता संज्ञा बन गई। अतएव दूध दुहनेवाली को 'दुहिता' कहते हैं। इसके पश्चात् इन लोगों ने 'दुहिता' का नवीन अर्थ लगाया,—जो घर का सारा दूध दुह ले जाती है, उसे दुहिता कहते हैं। यही दुहिता का दूसरा अर्थ है।

समाज में भारतीय स्त्रियों के ये ही विभिन्न सम्बन्ध हैं। जैसा मैंने आप लोगों से बताया है, माता का स्थान सबसे उच्च है, दूसरा स्थान पत्नी का है, उसके बाद कन्या का स्थान आता है। समाज का यह सब श्रेणीक्रम बहुत ही दुर्बोध्य और पेंचीदा

है। इसे कोई विदेशीय समझ ही नहीं सकता, चाहे वह वर्षों वहाँ रहे। उदाहरणार्थ, हमारे यहाँ सम्बोधन-वाचक सर्वनाम के तीन रूप होते हैं। इनमें से एक (आप) सबसे अधिक सम्मान-सूचक है, दूसरा (तुम) मध्यम श्रेणी का, और सबसे नीची श्रेणी का (तू और तेरा) आप लोगों के Thou और Thee की तरह का है। बच्चों और नौकरों के लिए तीसरे का प्रयोग होता है और बराबरीवालों के लिए मध्यम का। इन सबका प्रयोग जीवन के सभी जटिल सम्बन्धों में करना पड़ता है। उदाहरणार्थ, मैंने अपने सारे जीवन में अपनी बड़ी बहिन के लिए 'आप' का प्रयोग किया है, किन्तु वह मेरे लिए 'आप' का प्रयोग नहीं करती, वह मुझे 'तुम' कहती है। उसे भूलकर भी मेरे लिए 'आप' का प्रयोग नहीं करना चाहिए, क्योंकि उससे मेरा अकल्याण होगा। बड़ों के प्रति प्रेम का प्रकाश उसी प्रकार की भाषा में होना चाहिए। यही रिवाज है। इसी प्रकार मैं भी, माता-पिता तो क्या, बड़े भाई और बहिन के लिए भी 'तू' या 'तुम' का प्रयोग नहीं कर सकता। अपने माता-पिता का नाम लेकर तो हम लोग कभी पुकार ही नहीं सकते। इस देश का रीति-रिवाज जानने के पूर्व, एक बार जब एक अत्यन्त सुसंस्कृत परिवार के लड़के ने अपनी माता का नाम लेकर पुकारा, तो मेरे हृदय पर बड़ा धक्का लगा। फिर मुझे इसका अभ्यास हो गया। यह इस देश का रिवाज है। किन्तु हम लोग अपने माता-पिता का नाम उनके सामने नहीं ले सकते।

अब आप समझ सकते हैं कि हमारे स्त्री-पुरुषों का सामाजिक जीवन और सम्बन्ध का तारतम्य किस प्रकार जाल के समान जटिल है। हम अपने बड़ों के सामने अपनी स्त्री से बात

नहीं कर सकते; केवल अपने से छोटों के सामने या अकेले में ही हम उससे बातें कर सकते हैं। यदि मेरा विवाह हुआ होता, तो मैं अपनी पत्नी से अपने छोटे भाई, भतीजे और भाँजी के सामने बात कर सकता, किन्तु अपनी बड़ी बहिन, माता और पिता के सामने नहीं। मैं अपनी बहिनों से उनके पति के सम्बन्ध में कोई बातें नहीं कर सकता। बात यह है कि हिन्दू धर्म के अनुसार समाज-संस्था का अन्तिम आदर्श संन्यास ही है। इस सर्वोच्च एवं पवित्रतम आदर्श की तुलना मे विवाह एक निम्न कोटि की चीज है, यद्यपि आपेक्षिक दृष्टि से सर्वोच्च आदर्श की ओर ले जानेवाला वह एक सोपानस्वरूप है। इसी लिए कुटुम्ब में दाम्पत्य-प्रेम सम्बन्धी बाते करना निषिद्ध माना गया है। मैं अपनी बहिन, अपने भाई, अपनी माता या दूसरों के सामने एक उपन्यास नहीं पढ़ सकता, मुझे पुस्तक बद कर देनी पड़ती है।

खाने-पीने के सम्बन्ध में भी यही बात है। हम लोग बड़ों के सामने नही खा सकते। हमारी स्त्रियाँ तो पुरुषों के सामने कभी भोजन नहीं करतीं। हाँ, अपने से छोटों या बच्चो के सामने खा सकती है। स्त्री भूखी रहना पसन्द करेगी, पर अपने पति के सामने कभी भोजन नही करेगी। कभी-कभी भाई और बहिन एक साथ खा सकते है। यदि मै और मेरी बहिन खाते हों, और उसका पति दरवाजे पर आ जाय, तो वह खाना बंद कर देगी, और पति बेचारा भाग जायगा।

हमारे देश के ये सब विचित्र रीति-रिवाज है। इनमें से कुछ तो मैने दूसरे देशों में भी पाए है। अपना विवाह न करने के कारण पत्नी सम्बन्धी मेरा ज्ञान अपर्याप्त है, पर माता और बहिनो के सम्बन्ध में मे भलीभाँति जानता हूँ। दूसरे लोगों की

स्त्रियों को देखकर ही मैंने आप लोगों को पत्नी के सम्बन्ध में ये सब बातें बताई हैं।

शिक्षा और संस्कृति यह सब पुरुषों पर अवलम्बित है। अर्थात् जहाँ के पुरुष शिक्षित और सुसंस्कृत हैं, वहाँ की स्त्रियाँ भी शिक्षिता और सभ्य हैं; जहाँ पुरुष सभ्य और शिक्षित नहीं, वहाँ स्त्रियाँ भी वैसी ही हैं। आप लोग जानते हैं कि पुराने जमाने से, हिन्दुओं के प्राचीन रीति-रिवाज के अनुसार, प्राथमिक शिक्षा ग्राम-पंचायत के अधीन है। अति प्राचीन काल से सारी जमीन राष्ट्र या राजा की समझी जाती है। जमीन पर व्यक्ति-विशेष का कोई अधिकार नहीं होता। भारत में सारा राजस्व जमीन के लगान से ही आता है; क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति सरकार से ही जमीन पाता है। यह जमीन पाँच, दस, बीस या सौ परिवारों की साधारण सम्पत्ति के रूप से रहती है। वे ही जमीन की सारी व्यवस्था करते हैं, सरकार को मालगुजारी देते हैं, बीमारों की चिकित्सा के लिए एक वैद्य और बालक-बालिकाओं की शिक्षा के लिए एक शिक्षक का प्रबन्ध करते हैं, आदि-आदि।

आप लोगों में से जिन्होंने हर्बर्ट स्पेन्सर की किताबें पढ़ी हैं, उन्हें हर्बर्ट स्पेन्सर द्वारा लिखित शिक्षा की 'मठ-प्रथा' (Monastery System) के सम्बन्ध में स्मरण होगा, जिसका यूरोप में प्रचार किया गया और जो कुछ भागों में सफल भी हुई। इस प्रथा के अनुसार गाँववाले एक शिक्षक को रखते हैं। ये प्राथमिक पाठशालाएँ नितान्त प्रारम्भिक होती हैं, क्योंकि हमारी प्रणाली बहुत सरल है। प्रत्येक लड़का एक छोटासा आसन लाता है और लिखने के लिए उसका पहला कागज होता है ताड़ का पत्ता। पहले ताड़ के पत्ते पर इसलिए लिखता है

कि कागज महँगा पड़ता है। अपना आसन बिछाकर प्रत्येक लड़का बैठ जाता है और अपनी दावात और किताबें निकालकर लिखना आरम्भ कर देता है। थोड़ा अंकगणित, थोड़ा संस्कृत व्याकरण, थोड़ी भाषा और थोड़ा बहीखाता, बस इतना ही प्राइमरी स्कूल में पढ़ाया जाता है।

एक वयोवृद्ध अध्यापक द्वारा पढ़ाई गई एक सदाचार की पुस्तक में से हमें एक पाठ कण्ठस्थ कराया गया था, जो मुझे आज तक स्मरण है —

'गाँव की भलाई के लिए मनुष्य अपने कुल को छोड़ दे।

देश की भलाई के लिए मनुष्य अपने गाँव को छोड़ दे।

मानव-समाज की भलाई के लिए मनुष्य अपने देश को छोड़ दे।

विश्व की भलाई के लिए मनुष्य अपना सर्वस्व छोड़ दे।'

पुस्तक में इसी प्रकार के भाव व्यक्त करनेवाले पद्य हैं। इसे हम लोग कण्ठस्थ करते हैं और अध्यापक इसे विद्यार्थियों को समझा देते हैं। इन बातों को बालक और बालिकाएँ एक साथ ही सीखते हैं। इसके बाद शिक्षा में अन्तर पड़ जाता है। पुराने संस्कृत विश्वविद्यालयों में केवल बालक ही पढ़ते थे। बालिकाएँ विश्वविद्यालयों में पढ़ने के लिए बहुत कम जाती थीं; पर इसमें कुछ अपवाद तो अवश्य हैं।

आजकल यूरोपीय ढंग पर उच्च शिक्षा देने की ओर लोगों का विशेष ध्यान है। स्त्रियों को भी उच्च शिक्षा देने के पक्ष में अधिक लोगों की सम्मति है। हाँ, भारत में कुछ ऐसे भी लोग हैं, जो यह नहीं पसन्द करते; पर प्रबल सम्मति स्त्री-शिक्षा के पक्षपातियों की ही है। यह आश्चर्य की बात है कि आक्सफर्ड

ही एक मुहावरे द्वारा आप लोगों को स्मरण करा देना चाहता हूँ कि 'जो हंसिनी के लिए सुखाद्य है, वही हंस के लिए भी है।' विदेश की महिलाएँ हिन्दू स्त्रियों पर किए गए अत्याचारों के प्रति दुःख प्रदर्शित करती हैं, पर वे हिन्दू पुरुषों पर किए गए अत्याचारों को कभी नहीं देखतीं। वे केवल बालिकाओं के लिए आँसू बहाती हैं, पर बालिकाओं के साथ विवाह करते कौन हैं? किसी व्यक्ति से जब यह कहा गया कि हिन्दू बालिकाओं का विवाह बूढ़ों से किया जाता है, तो उसने पूछा, "तब नवयुवक क्या करते हैं? सब लड़कियाँ केवल बूढ़ों से ही ब्याही जाती हैं, यह कैसी बात है!" हम आजन्म वृद्ध हैं—वहाँ के शायद सभी आदमी बूढ़े हो गए हैं!

भारत का आदर्श है—आत्मा की मुक्ति। यह संसार असार है। यह केवल एक कल्पना है, एक स्वप्न है। यह जीवन ऐसे कई लाखों जीवनों में से एक है। यह सारा विश्वब्रह्माण्ड केवल माया है। यही हमारा दर्शन है। बच्चे जीवन को देखकर प्रसन्न होते हैं और समझते हैं कि यह बड़ा सुन्दर और अच्छा है, किन्तु कुछ ही वर्षों बाद उनका वह सुख का स्वप्न टूट जाता है। उन्होंने जीवन का आरम्भ किया था रोते हुए, और रोते ही हुए वे जीवन को छोड़ेंगे भी। राष्ट्र अपनी जवानी के जोश में समझते हैं कि हम सब कुछ कर सकते हैं—"हमीं पृथ्वी के देवता हैं, हमें ही ईश्वर ने चुना है।" वे सोचते हैं कि परमात्मा ने उन्हें संसार पर शासन करने, परमात्मा के कार्यों को आगे बढ़ाने, जो मन चाहे करने तथा दुनिया को उलट तक देने का अधिकार दिया है—लूटने, मारने और कत्ल करने की उन्हें मंजूरी दी है। वस्तुतः वे ऐसा इसलिए सोचते हैं कि वे केवल

नासमझ बच्चे हैं। कितने साम्राज्य-पर-साम्राज्य उठे, उज्ज्वल और महिमान्वित हुए, और बाद में कहाँ विलीन हो गए, कौन जानता है? सम्भवतः वे ध्वंस का एक विराट् स्तूपमात्र रह गए हों।

"नलिनीदलगतजलमतितरलम्
तद्वज्जीवनमतिशयचपलम्।"

——'कमल के पत्ते पर पड़ी हुई पानी की बूँद इतस्ततः डोलती हुई एक क्षण में जैसे गिर जाती है, बस वही हाल इस मृत्युशील जीवन का भी है।' जिस ओर हम घूमते हैं, नाश ही दिखाई पड़ता है। जहाँ आज जंगल है, वहाँ किसी जमाने में अनेक नगरों से पूर्ण कोई साम्राज्य रहा होगा। भारतीयों के प्रधान भाव, विचार आदि इसी प्रकार के होते हैं। हम जानते हैं कि आप पाश्चात्यों की नसों में नौजवानी का खून दौड़ रहा है। हम जानते हैं कि मनुष्यों की भाँति राष्ट्रों का भी समय होता है। इस समय यूनान कहाँ? रोम कहाँ? कल के शक्तिशाली स्पेन-वाले आज कहाँ? इन सबको देखते हुए, कौन जानता है भारत का क्या होगा? इस प्रकार राष्ट्र जन्म लेते हैं और मर जाते हैं; ऊपर उठते हैं और फिर नीचे गिर पड़ते हैं। हिन्दू बचपन से ही उस आक्रमणकारी मुगल से परिचित है, जिसकी सेना को पृथ्वी की कोई शक्ति नहीं रोक सकी और जिसने आपकी भाषा में भयंकर 'Tartar' (तातार) शब्द का निर्माण किया। हन्दुओं ने अपना पाठ पढ़ लिया है। वे आजकल के बच्चों की ह बकना नहीं चाहते। पश्चिमदेशीय लोगो! तुम्हारी जो ा हो, कह डालो——अभी यह तुम लोगों का समय है। ाओ बच्चो! जो कुछ बकना हो, बक डालो। आजकल का

समय तो बच्चों के बकने का है। हमने यथेष्ट अभिज्ञता प्राप्त कर ली है और इसी लिए हम चुप हैं। आज तुम लोगों के पास कुछ धन है, और इसलिए तुम लोग हमारी ओर तिरस्कार की दृष्टि से देखते हो। अच्छा, यह तुम्हारा समय है, बच्चो! जितना बकना हो, बक लो — यही हिन्दुओं का मनोभाव है।

"नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन।

* * *

नाविरतो दुश्चरितान्नाशान्तो ना समाहित:।
नाशान्तमानसो वाऽपि प्रज्ञानेनैनमाप्नुयात्॥"

—भगवान लम्बी-चौड़ी बातों द्वारा नहीं मिलते। बौद्धिक शक्ति द्वारा भी वे नहीं मिलते। विजेता की अतुल शक्ति द्वारा भी वे नहीं प्राप्त होते। पर जो व्यक्ति विश्व के मूल-रहस्य को जानता है, और यह समझता है कि उन परमात्मा के अतिरिक्त अन्य सभी कुछ नाशवान हैं, केवल उसी के पास परमात्मा प्रकट होते हैं, दूसरों के पास नहीं। भारत ने कई युगों की अनुभूति से अपना पाठ सीखा है। उसने परमात्मा की ओर अपनी दृष्टि फेरी है। अवश्य उसने बहुत सी गलतियाँ की हैं, कूड़ों का ढेर उस जाति पर लदा है। पर कोई बात नहीं, उससे क्या? कूड़ा-कर्कट और नगरों को साफ करने से भला क्या मिलेगा? क्या इससे जीवन मिलता है? जिन जातियों में अच्छी-अच्छी सस्थाएँ हैं, वे भी तो मर जाती हैं। फिर पाँच दिनो मे बननेवाली और छठवे दिन टूट जानेवाली इन दिखावटी पश्चिमी सस्थाओं की भला क्या बिसात! इन मुट्ठी भर राष्ट्रों में से एक भी तो दो शताब्दियों तक जीवित नही रह सकता। किन्तु हमारी जाति की प्रथाओं को देखो, किस तरह वे युगों के घात-प्रतिघात के

हमारे अन्य प्रकाशन

बीच भी आज तक टिकी हुई हैं। हिन्दुओं का कहना है-- "
हमने पृथ्वी के समस्त पुराने राष्ट्रों को दफना दिया है
सभी नए राष्ट्रों को भी दफना देने के लिए यहाँ खड़े हैं;
हमारा आदर्श यह जगत् नहीं वरन् जगत् के अतीत है
आपका आदर्श है, आप वैसे ही हो जायँगे। यदि आपक
अनित्य है, पार्थिव है, तो आप वैसे ही हो जायँगे। यि
आदर्श जड़ है, तो आप भी जड़ ही हो जायँगे।
हमारा आदर्श है परमात्मा। एकमात्र वे ही अवि
अन्य किसी का अस्तित्व नहीं है, और उन परमात
हम भी सदा विनाशहीन हैं।"

२६. विविध प्रसंग १=)
२७. व्यावहारिक जीवन में वेदान्त १=)
२८. राजयोग १=)
२९. चिन्तनीय वातें १)
३०. धर्मरहस्य (द्वि. सं.) १)
३१. जाति, संस्कृति और समाजवाद १)
३२. स्वाधीन भारत ! जय हो ! (द्वि. सं.) १)
३३. भगवान रामकृष्ण धर्म तथा संघ (द्वि. सं.) ।।।=)
३४. शिक्षा (द्वि. सं.) ।।=)
३५. शिकागो-वक्तृता (प. सं.) ।।=)
३६. हिन्दू धर्म के पक्ष में (द्वि. सं.) ।।=)
३७. मेरे गुरुदेव (द्वि. सं.) ।।=)
३८. कवितावली ।।=)
३९. शक्तिदायी विचार (द्वि. सं.) ।।=)
४०. हमारा भारत ।।)
४१. वर्तमान भारत (च. सं.) ।।)
४२. मेरा जीवन तथा ध्येय (द्वि. सं.) ।।)
४३. पवहारी वावा (द्वि. सं.) ।।)
४४. मरणोत्तर जीवन (द्वि. सं.) ।।)
४५. सरल राजयोग ।।)
४६. मेरी समर-नीति ।≡)
४७. मन की शक्तियाँ तथा जीवन-गठन की साधनाएँ (द्वि. सं.) ।=)
४८. ईशदूत ईसा ।=)
४९. विवेकानन्दजी की कथायें १।)

---

५०. श्रीरामकृष्ण-उपदेश (द्वि. सं.) ।।।)
५१. वेदान्त—सिद्धान्त और व्यवहार—स्वामी सारदानन्द, ।=)
५२. गीतातत्त्व—स्वामी सारदानन्द, २।=)

श्रीरामकृष्ण आश्रम, धन्तोली, नागपुर - १, म. प्र.